सिद्धयोग

संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष-40 : अंक-10
जनवरी 2008

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवॉई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत-कण

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दंडेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुख:।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/3)

अर्थात् तुम्ही स्त्री हो, पुरुष भी तुम्ही हो, तुम कुमार, तुम कुमारी भी हो और तुम्ही दण्ड का सहारा लिये हुए वृद्ध हो, विश्व में सर्वत्र तुम्ही हो।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन:।।

(गीता 6/29)

अर्थात् सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त आत्मा वाला तथा सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में कल्पित देखता है।

◆ ◆ ◆

यद्यत् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्।।

(गीता 10/41)

मनुष्यों में जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है, समझो वहाँ मैं वर्तमान हूँ, मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

◆ ◆ ◆

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्ति: पृष्ट गिरेवि। उर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वस्मृतमस्मि। द्रविणाँ सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षित:।

(तै.उपनिषद् 1/10)

मैं (संसार रूपी) वृक्ष को हिलाने वाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत के सदृश है। मैं वह हूँ जिसके ज्ञान का प्रवेश (प्रकाश) ऊँचा उदय हुआ है, मानो सूर्य में है। मैं सुमेधा हूँ, अमृत हूँ, क्षीण न होने वाला।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष :40
अंक : 10

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विलसतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जनवरी
2008

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये।।

मन से श्रीराम चरणों का चिन्तन, वचन से श्रीरामचरणों का गुणगान, सिर से श्रीरामचरणों में नमन और अन्तत: उन्हीं चरणों की शरण लेता हूँ।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 7
3. क्लिष्ट संस्कार का सूक्ष्म भुगतान – श्री केशवदेव उपाध्याय 10
4. श्रद्धा सुमन – श्री देवव्रत द्विवेदी 14
5. दुर्लभ दर्शन – डॉ. रवीन्द्र कुमार जौहरी 15
6. सिद्धयोग – स्वामी पुरुषोत्तम तीर्थ 18
7. श्री प्रभुचरणों में समर्पित – श्री राजेश कुमार सिंह 20
8. गुंजन – डॉ. विजय सिंह 21
9. सद्‌गुरु महिमा – श्री कन्हैया लाल शास्त्री 23
10. प्राणायाम का शरीर पर प्रभाव – स्वामी कुवलयानन्द 24
11. शिष्य से कराया पत्र का इंतजार – श्री जगदीशराय बंसल 32
12. अष्टांग योग – डॉ. ऋषिराम शर्मा 34
13. जड़ी–बूटी चिकित्सा : युग की आवश्यकता – पं. लीलापत शर्मा 38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 120.00
द्विवार्षिक	: रु. 210.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

योगासन एवम् ऊर्ध्वरेतसता

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

षटचक्रों के अन्दर मणिपूरक नामक नाभि का चक्र है। मणिपूरक चक्र का स्थान नाभिमण्डल है। नाभिमण्डल ही वीर्याशय यानी वीर्य का स्थान है। मनुष्य के मन में जब किसी प्रकार की काम-वासना का उदय होता है तो कामाग्नि की ऊष्माता से वीर्य सारे शरीर से आकर्षित होकर स्खलन की ओर जाता है। आयुर्वेद के परमाचार्य श्री वागभट्ट ने वीर्य को वपुसार, जीवनाशय, गर्भबीज आदि नामों से उद्घोषित किया है। जैसे –

शुक्र सौम्यं सितं स्निग्धं बल पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भ बीजं वपुः सारो जीवनाश्रय उत्तमः॥

अतः इसका सारे शरीर में व्यापक रहना जीवधारियों के लिए बहुत ही आवश्यक है। जो व्यक्ति किसी भी प्रकार का व्यायाम नहीं करते हैं, खट्टे-मीठे पदार्थ खाते रहते हैं, उनके मन में काम-वासना बढ़ती रहा करती है। खाली बैठे रहने से मन में कुभावनायें आती हैं और शनैः शनैः कुकर्म-चेष्टायें बढ़ने लगती हैं, जिससे मनुष्य उन्नति के लिए प्राप्त हुए अपने पवित्र जीवन को पतन की ओर ले जाने का कारण बन जाता है। इसलिए वीर्य को ऊर्ध्वरेतस बनाने के लिए साधक को पहले ऐसा प्रयत्न कर लेना चाहिए कि वपुसार जीवनाश्रय वीर्य को सारे शरीर में व्यापक कर डाले। वीर्य को शरीर में व्यापक करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य व्यायाम की आदत डाले। व्यायाम करने के जितने प्रकार आज भारत व दूसरे देशों में प्रचलित हैं वे सब मनुष्यकृत होने के नाते अधिक लाभदायक नहीं हैं। ऐसे सभी व्यायाम शारीरिक जड़ता के दाता हैं। ये वीर्य को शरीर में व्यापक तो बनाते हैं किन्तु उसका प्रभाव सभी अंगों पर समान रूप से नहीं पड़ता। स्नायु कहीं-कहीं तो बहुत ही दृढ़ हो जाते हैं जिससे सारे शरीर में रस व रक्त का समान रूप से वहन नहीं हो पाता। जो व्यायाम हमारे पूर्वज योगाचार्यों ने अपने ग्रंथ में लिखे हैं वे सभी उनकी ऋतम्भरा प्रज्ञा की उत्तम देन हैं और ये सभी व्यायाम स्नायु-मण्डल को कोमल, रस व रक्त का ठीक तरह से वहन करने वाले बनाते हैं एवं मन की एकाग्रता के दाता हैं, अतः शरीर को नीरोग, हल्का, फुर्तीला ओज-तेज प्रधान एवं वीर्य को शरीर को व्यापक बनाने के लिए योगासन बहुत उपयोगी हैं। जो लोग किसी योग शिक्षण केन्द्र में जाकर नियमानुवर्तिता से योगासनों का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है। कामोद्दीपक भावनायें स्वतः ही शान्त होने लगती हैं तथा मन आत्म-चिन्तन की ओर

बढ़ने लगता है। योगासनों का व्यायाम सभी प्रकार से उत्तम है, किन्तु वीर्य को शरीर में व्यापक बनाये रखने के लिए उदर–सम्बन्धी आसनों का अभ्यास बहुत ही आवश्यक हो जाता है। जैसे– उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, नावासन, नाभ्यासन, धनुरासन, शलभासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन आदि। ये सभी आसन पेट से सम्बन्ध रखने वाले है। योग शिक्षण केन्द्रों में सभी आसन नियमानुसार कराये जाते हैं। अभ्यासी लोग पहले खड़े होने के आसन करते है उसके बाद बैठने–लेटने के आदि क्रमानुसार करते है।

उपरोक्त विधि के अनुसार वीर्य शरीर में व्यापक तो हो ही जायेगा, किन्तु ऊर्ध्वरेतसता प्राप्त करने के लिए कुछ खास–खास अभ्यास है जिनका दिग्दर्शन हम निम्नलिखित पंक्तियों में कर रहे है।

हमारे योगाचार्यों ने 'सिद्धासन' को सर्व सिद्धियों का दाता बतलाया है। 'सिद्धासन' की एक विशेषता यह है कि उसके करने से मनुष्य स्वाभाविक ही संयतेन्द्रिय बन जाता है क्योंकि सिद्धासन लगाने से वीर्यवाहिनी नाड़ी संकुचित हो जाती है और उस नाड़ी के दब जाने से वीर्य का अधोवेग रूककर ऊर्ध्ववेग बन जाता है। 'सिद्धासन' का प्रकार योगाचार्य भगवान सदाशिव ने शिवसंहिता में इस प्रकार बतलाया है:–

'योनिं संपीड्य यत्नेन पाद मूलेन साधक:।
मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेत योगवित्सदा।।
ऊर्ध्व निरीक्ष्य भ्रूमध्यं निश्चल: संयतेन्द्रिय:।
विशेषोऽवक्राश्च रहस्युद्वेगवर्जित:।।
एतत्सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम्।

अर्थात्– अपने बायें पैर की एड़ी को अण्डकोषों के नीचे योनिस्थान में (जिसको सीवनी कहते हैं) ले जाकर दृढ़ता के साथ जमा दो। पीछे गुदाद्वार के नीचे कोई कपड़ा या कपड़े की साधारण सी गद्दी रख दो जिससे लिंगनाल को दबाने में यह गद्दी सहायक हो जाये। इस प्रकार बायें पैर की एड़ी को योनिस्थान में दृढ़ता से जमाकर दाहिने पैर की एड़ी को लिंगनाल के ऊपर जमाकर रखो। दोनों पैरों के टखने परस्पर मिले हुए हों। एक पैर लिंगेन्द्रिय के नीचे योनिस्थान में हो और दूसरा लिंगेन्द्रिय के ऊपर जमा हुआ हो। इस विधि से बैठ जाओ। अपने मेरूदण्ड को सीधा रखो। दोनों हाथों को तनाव के साथ घुटनों पर रखो एवं दृष्टि को भ्रूमध्य में ले जाओ, दृष्टि थोड़ी सी झुकी हुई हो। मन में कोई भी उद्वेग न हो। इसको योगाचार्यों ने सिद्धासन कहा है।

जो लोग केवलमात्र सिद्धासन का अभ्यास करते रहते है उनके भी मनोविकार शांत हो जाते है और वीर्य की अधोगति रूक करके वेग ऊपर की ओर बढ़ने लगता है।

इसके साथ एक विशेष प्रकार का प्राणायाम करो। अपने प्राणवायु को वेग के साथ बाहर निकाल दो। उड्डियान बंध के साथ आधार चक्र को ऊपर की ओर खींचो और प्राणवायु को

रोक दो। आधार चक्र खींचे रहो। अपने मन में धारणा करो कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर खींच रहा हूँ। अनुभवी सन्तों ने इस प्राणायाम में लिंगेन्द्रिय को ऊपर की ओर खींचने की भी विधि लिखी है, किन्तु नाभिमण्डल से नीचे की नाड़ियों को अपने हाथ की हथेली से तनाव देकर रखोगे तो भी परिणाम वही निकलेगा। अपने पेट की वायु को बाहर निकाल देने पर उसको यथाशक्ति बाहर रोके रहना चाहिए। जब घबराहट मालूम पड़े तब धीरे–धीरे उस वायु को अन्दर ले लो, किन्तु अन्दर रोकने का अभ्यास नहीं करना चाहिए। वर्षों तक योग साधक यदि इस प्राणायाम को करता रहता है तो वह अवश्य ही ऊर्ध्वरेतस बन जाता है। उसका वीर्य ऊर्ध्वगमन करने लगता है और वह बिन्दुजय कर लेता है।

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्धयति भूतले।

अर्थात्–बिन्दुजय प्राप्त करने के बाद ऐसा कोई साधन नहीं जिसको मनुष्य न कर सके। योगदर्शन में ब्रह्मचर्य–प्रतिष्ठा का फल बतलाया है–

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

यस्य लाभादप्रतिघात् गुणानुत्कर्षयति सिद्धश्च विनियेषु ज्ञानमाधतु समर्थो भवतीति।

अर्थात्–इस प्रकार ब्रह्मचर्य धारण करने से योगी अपने शरीर में अलौकिक गुणों का आकर्षण कर लेता है और शनैः शनैः उसका मन–बुद्धि का इतना ऊँचा विकास हो जाता है कि उसे अपने विनीत शिष्यों के अन्दर शक्ति संचार करने की योग्यता आ जाती है। इसलिए उपरोक्त साधनाओं द्वारा साधक को अपने आपको ऊर्ध्वरेतस बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्यान्य योग साधनों में शक्तिचालिनी मुद्रा जो बज्रासन के अभ्यास से की जाती है वह भी ऊर्ध्वरेतसता की जननी है। शक्तिचालिनी मुद्रा के अन्दर विपरीत पाद बज्रासन लगा करके भस्त्रिका प्राणायाम किया जाता है, जिसके फलस्वरूप कुण्डलिनी महाशक्ति का जागरण एवं वीर्य का ऊर्ध्वकर्षण अनायास ही होता है।

शीर्षासन एवं ऊर्ध्वरेतसता

शीर्षासन हमारे योगाचार्यों की अमर देन है इसको विपरीतकरणी मुद्रा के रूप में भी बतलाया गया है। जो लोग नियम से विधिपूर्वक शीर्षासन का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य भी ऊर्ध्वगमन करने लगता है किन्तु शीर्षासन के अभ्यासियों को चाहिए कि इस विपरीतकरणी मुद्रा को किन्हीं योग–शिक्षण केन्द्रों में जाकर सीखें। शीर्षासन के अभ्यासी लोगों को मस्तिष्क का ऊपर वाला भाग जिसे कपाल कहते हैं, वही जमीन पर लगाना चाहिए और अपने आहार का ख्याल रखना चाहिए। इसके अभ्यास के शास्त्रीय लेख हैं।

अधः शिरश्चोर्ध्वपादः क्षण स्यात्प्रथमे दिने।
क्षणाच्च किञ्चिदधिकमभ्यसेच्च दिने दिने।।
वलितं पलितं चैव षण्मासोर्ध्व न दृश्यते।
याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स तु कालजित्।।

अर्थात्–पहले दिन एक क्षण के लिए शीर्षासन करना चाहिए। दूसरे दिन एक क्षण से कुछ अधिक बढ़ायें। इस प्रकार बढ़ाते–बढ़ाते महीने भर में दो–तीन मिनट तक ही बढ़ाना चाहिए। शीर्षासन के अभ्यासी योगी को भूखा नहीं रहना चाहिए।

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्धिनी।
आहारो बहुलस्तस्य संपाद्य: साधकस्य च।।
अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात्।।

अर्थात्–जो साधक शीर्षासन का अभ्यास करता है उसकी उत्तरोत्तर जठराग्नि बढ़ती चली जाती है। इसलिए खान–पान में उसको संकोच नहीं करना चाहिए और न किसी प्रकार का व्रतादि करना चाहिए। क्योंकि यदि शीर्षासन का अभ्यासी अल्पाहार होगा तो उसकी जठराग्नि स्वयं उसका दहन कर देगी। शीर्षासन करने वाले साधक को भी अपने अभ्यास काल में यह धारणा करते रहना चाहिए कि मैं अपने वीर्य को नाभिमण्डल से ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ। नाभि–मण्डल के नीचे के भाग को ऊर्ध्वकर्षण करने से साधक अवश्य ही ऊर्ध्वरेतसता को प्राप्त कर लेता है।

यहाँ जिन क्रियाओं का संकेत किया गया है उन सबको साधक को समझकर करना चाहिए। यदि विधि पूरी तरह समझ में न आ सके तो अवश्य योग–शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करके ही इन क्रियाओं को करना चाहिए जिससे वे पूर्ण लाभ उठा सकें।

●●●

प्रत्येक आत्मा अनन्त है। हमारे पैरों तले रेंगते रहने वाले क्षुद्र कीट से लेकर महत्तम और उच्चतम साधु तक में वह अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता और सभी गुण अनन्त परिमाण में मौजूद हैं। भेद केवल अभिव्यक्ति की न्यूनाधिक मात्रा में है। कीट में उस महाशक्ति का थोड़ा ही विकास पाया जाता है, तुममें उससे अधिक और किसी दूसरे देवोपम पुरुष में तुमसे भी कुछ अधिक शक्ति का विकास हुआ है; भेद बस इतना ही है, परन्तु है सभी में वही एक शक्ति।

पतंजलि कहते हैं – 'तत: क्षेत्रिकवत्' (4/3)। किसान जिस तरह अपने खेत में पानी भरता है। किसी जलाशय के वेग से खेत के बह जाने के भय से उसने नाली का मुँह बन्द कर रखा है। जब पानी की जरूरत पड़ती है, तब द्वार खोल देता है, पानी अपनी ही शक्ति से उसमें भर जाता है। पानी आने के वेग को बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि वह जलाशय के जल में पहले से ही विद्यमान है। इसी तरह हममें से हर एक के पीछे अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता, अनन्त सत्ता, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द का भण्डार परिपूर्ण है, केवल यह द्वार – यही देहरूपी द्वार हमारे वास्तविक रूप के पूर्ण विकास में बाधा पहुँचाता है।

– स्वामी विवेकानन्द

आध्यात्म में प्राणोपासना का महत्व

परमात्मा की प्राप्ति के अनेक मार्ग शास्त्रों में बताये गये हैं। मनुष्य को संसार में आकर कर्म करना ही होता है इसी से उसका लौकिक जीवन चलता है औरपरलोक में सुख-दुःख का निर्णय होता है। पुण्य कर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है कर्म-काण्डी लोग पुण्य लोकों को जाते हैं। और आत्मरामी, ब्रह्मनिष्ठ योगी अमृतत्व को प्राप्त होते हैं।

"सर्व एते पुण्यलोकाः भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति।"

(छान्दोग्य)

गीता में भी कहा गया है जो अपने आत्मा में ही संतुष्ट रहता है उसके लिए कोई लौक कार्य नहीं है। आत्मरामी योगी लोग आत्मचिन्तन से बढ़कर कोई दूसरा लाभ नहीं मानते। इसीलिये कहा गया है कि योगी लोग जो कुछ भी करते हैं आत्मशुद्धि के लिये ही करते हैं। अध्यात्म में प्राणोपासना की महिमा व आवश्यकता को अपरिहार्य माना जाता है। सूर्य को समस्त लोकों का आत्मा माना गया है, इसी से सभी प्राणियों में चेतना रहती है। प्राणियों के शरीर में भी सूर्य का अंश प्राण के रूप में विद्यमान है। जो प्राण तत्व के रहस्य को समझ कर मन को संयुक्त करके अपने ध्येय में अपनी वृत्ति को एकाग्र करता है उसे आध्यात्म में सफलता मिलती है।

अध्यात्म विज्ञान की पहली सीढ़ी प्राणसाधना से ही प्रारम्भ होती है। मन, प्राण एवं पाँचों कर्म व ज्ञानेन्द्रियों को शास्त्र में 'इन्द्रिय' नाम दिया गया है। ज्ञान प्राप्ति का माध्यम होने से इनका एक नाम 'करण' भी है। प्राण इन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ है। छान्दोग्य उपनिषद में इस सम्बन्ध में एक कथा आती है जिसके अनुसार सभी इन्द्रियाँ एक बार अपने स्वामी प्रजापति के पास गई और पूछा हममें सर्वश्रेष्ठ कौन है? प्रजापति ने कहा तुममें से जिसके शरीर में उत्क्रमण करने पर यह शरीर अतिशय पापिष्ठ या प्राणहीन होकर निश्चेष्ट होकर अपवित्र या अस्पृश्य हो जाता है वही तुम में श्रेष्ठ है। ऐसा सुनकर सर्वप्रथम वाणी ने शरीर से एक वर्ष के लिये उत्क्रमण किया। फिर भी जीवन चलता रहा। तत्पश्चात वाणी लौट आई। इसी प्रकार सभी ज्ञानेन्द्रियों ने बारी-बारी से एक-एक वर्ष के लिये उत्क्रमण किया। इसके पश्चात मन ने भी एक वर्ष के लिये शरीर से उत्क्रमण किया फिर भी शरीर जीवित रहा। एक वर्ष के बाद पुनः मन के लौट आने पर मन ने दूसरों से पूछा-तुम मेरे बिना कैसे जीवित रहे। उन्होंने कहा- "जिस प्रकार शिशु जिसका मन विकसित नहीं होता है, श्वास लेता है, नेत्र से देखता है, अस्पष्ट वाणी बोलता है, सुनता है और जीवित रहता है इसी प्रकार से हम भी रहे।" अन्त में प्राण ने शरीर से उत्क्रमण करने का उपक्रम किया। सभी इन्द्रिय प्राण के बिना बैचेन होने लगी, छटपटाने लगी और इस प्रकार स्तुति करने लगी- "आप हमारे स्वामी हैं, आप ही हम में सर्वश्रेष्ठ हैं आप शरीर से उत्क्रमण न

करे।" ऐसा कहने पर प्राण ने उत्क्रमण नहीं किया और प्राण की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध हो गई।

छान्दोग्य उपनिषद् में ही एक कथा और आती है जिससे मुख्य प्राण का असुरों के द्वारा पाप से न बींध पाने की बात आती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, एवं गन्ध ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। असुरों ने श्रोत्र, चक्षु, नासिका, रसना एवं त्वचा को पाप से बींध दिया किन्तु मुख्य प्राण को असुर बींध नहीं पाये। ज्ञानेन्द्रियों का असुरों के द्वारा बींधने का तात्पर्य यह है कि जब हम बहिर्मुखी वृत्ति होकर भोगों में आसक्त होकर विषयों का रस लेने लगते हैं यही असुरों के द्वारा इन्द्रियों को बींधा जाना है। प्रकृति के दो उद्देश्य हैं भोग और मोक्ष। इनके भी दिव्य और अदिव्य भेद से दो रूप हैं। जब तक मनुष्य बहिर्मुखी वृत्ति में रहकर विषयों में रमण करता है तभी इन्द्रियों का अदिव्य रूप कहा जाता है, किन्तु जब साधक अपने इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करके दिव्य शब्द, स्पर्श, रूप रसादि का अनुभव करता है तो यह इन्द्रियों का दिव्य रूप कहलाता है। यह धीरे-धीरे साधक के मन को एकाग्र करने में सहायक होते हैं और समाधि के जनक बन जाते हैं। इस प्रकार से प्रकृति भुक्ति व मुक्ति दोनों ही प्रदान करती है। यह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह कौन सा मार्ग चुने।

कठोपनिषद में इस सम्बन्ध में एक मन्त्र आया है-

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू,तस्माद् पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।।

अर्थात विधाता ने ज्ञानेन्द्रियों को स्वाभाविक रूप से बहिर्मुखी बनाया है अर्थात इन्द्रियों के गोलक बाहर की ओर खुले हैं इसी कारण से कोई अन्तरात्मा को नहीं देख पाता है। किन्तु जो योगी अपने इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर आत्मतत्व की ओर बढ़ता है तो वह आत्मदर्शन पा लेता है। इस प्रकार से योगी अध्यात्म-योग को पा जाता है। अस्तु।

योग साधना में समाधि प्राप्ति की मुख्य दो पद्धतियाँ हैं जिसमें पहला - 'राजयोग' तथा दूसरा 'हठयोग' है। राजयोग पातञ्जलि योग भी कहलाता है जो मनोलय की पद्धति है तथा दूसरी पद्धति हठयोग की है। आदिनाथ भगवान् सदाशिव से यह परम्परा चली है। इसी परम्परा में महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ जी, श्री गोरखनाथ जी तथा चौरासी सिद्ध हुये हैं। इस पद्धति में प्राण पर जय प्राप्त करके स्वतः मन की एकाग्रता बनती है। प्राणायाम, बन्ध व मुद्रा से शरीर को निर्मल, सुदृढ़ व स्वस्थ तथा लघुत्व प्रदान करती है। प्राण जय की साधना की आवश्यकता को योग परक उपनिषदें भी प्रतिपादित करती हैं। गीता में कर्मयोग के अध्यायों में भगवान ने प्राणजय एवं प्राणायाम की बात कही है, प्राण का अपानवायु में हवन तथा अपान का प्राण में हवन प्राणजय की साधना है, किसी अनुभवी गुरु से ही इसका ज्ञान मिल सकता है। श्री मद्भागवत् के तृतीय स्कन्ध में देवहूति को उपदेश करते हुये भगवान् कपिल मुनि कहते हैं - योगी पूरक, कुंभक व रेचक से प्राणों का मार्ग शोधित कर लें, निम्न श्लोक देखें-

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः।
प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम्।।

प्राणों का मार्ग शोधित कर लेने पर चित्त की चंचलता नष्ट होकर स्थिरता मिलती है। इसी प्रकार से एकादश स्कन्ध में उद्धव को उपदेश करते हुये भगवान कृष्ण कहते हैं–

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः।

अर्थात् जो जितेन्द्रिय है जिसका श्वास, प्रश्वास पर जय हो गया है ऐसा योगी ध्यान, धारणा व समाधि द्वारा चित्त समाहित कर लेता है उसमें अनेक सिद्धियों का प्राकट्य हो जाता है। भागवत् में ही योगी के लिये '**जितासनः जितश्वासः जितसंगः जितेन्द्रियः**' की बात कही गई है। अर्थात् योगी पहले आसन सिद्ध कर ले। पश्चात श्वासों पर अधिकार पा ले। संगदोष को त्याग दे और जितेन्द्रिय बन जाये। श्री पतञ्जलि देव जी ने समाधि प्राप्ति के प्रमुख उपायों में प्राणायाम को भी माना है '**प्रच्छर्दन विधारणाभ्याम् वा प्राणस्य**' सूत्र कहकर के इसकी पुष्टि की है। अजपा साधना भी प्राण जय की साधना है। सिद्धयोग परम्परा में सिद्ध गुरु से ही यह विद्या प्राप्त की जा सकती है। इसे ही उपनिषदों में अग्नि–विद्या के नाम से भी कहा गया है। इस प्रकार से यह बात सिद्ध होती है कि अध्यात्म योग में प्राण जय की साधना समाधि प्राप्ति की अचूक साधना है। 'प्राण' को 'ब्रह्म' भी श्रुतियों में कहा गया है। क्योंकि 'प्राण तत्व' ही प्राणियों का जीवन है। अतः योगियों को अन्तर्मुखता में विकास पाने के लिये प्राण विज्ञान के रहस्य को समझना ही चाहिये।

❑❑❑

शोक–संवेदना

बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि बनारस के श्री गोपेश मालवीय के पिता श्री श्यामसुन्दर मालवीय का 19 नवम्बर, अक्षय नवमी के दिन, देहावसान हो गया है। वे गुरुदेव के दीक्षित बच्चे थे व 80 वर्ष की आयु के हो चुके थे। श्री प्रभु जी दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान दें तथा दुःख सन्तप्त परिवार को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें।

• • •

काँगड़ा हिमाचल प्रदेश के गुरुभाई श्री विजयपुरी जी की माताजी का 24 नवम्बर, कार्तिक पूर्णमासी, के दिन, देहावसान हो गया। श्री प्रभु जी का चिन्तन करते हुए उन्होंने देह त्याग किया है। वे 97–98 वर्ष की थी तथा गुरुदेव भगवान् से दीक्षित थी। श्री प्रभु जी इन्हें अपने चरणों में स्थान दें। इस दुःख के अवसर पर सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक शोक संवेदना प्रकट करता है तथा शोक सन्तप्त परिवार के सदस्यों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करने की ईश्वर से कामना करता है।

सम्पादक – सिद्धयोग मासिक

क्लिष्ट संस्कार का सूक्ष्म भुगतान

प्रेषक :- केशव देव उपाध्याय

उत्तर प्रदेश के मिरजापुर जनपद के सदर तहसील में खुटहा नाम का एक कस्बा है। उसी गाँव के निवासी एक ठाकुर साहब है जिनका नाम श्री राजेश्वरी प्रसाद सिंह है। आस-पास के लोग उन्हें राजेश्वरी बाबू के नाम से सम्बोधित करते हैं। श्री राजेश्वरी बाबू ने एक शक्ति सम्पन्न औघड़ से मंत्र लिया है। कहने का तात्पर्य यह कि श्री राजेश्वरी बाबू औघड़ के शिष्य है। यह शक्ति सम्पन्न औघड़ बिहार प्रान्त के पटना शहर का मूल निवासी है एवं उत्तर प्रदेश तथा बिहार प्रान्त के कई ग्रामों में इसके शिष्य हैं। हमारे एक आदरणीय गुरुभाई जो मिरजापुर जनपद के ही मूल निवासी है, का दामाद कई वर्षों तक रोग एवं दर्द के कारण अपंग रहा। पुत्र मोह के बाद दामाद मोह का ही नम्बर आता है, अतः हमारे आदरणीय गुरुभाई जी भी अपने दामाद का हाल-चाल लेने कई बार उसके घर गये। उनके दामाद को अपंग बने चार साल (वर्ष) पूर्ण हो गये थे एवं पाँचवे वर्ष में चौथा महिना चल रहा था। इसी समय हमारे आदरणीय गुरुभाई जी, अपने दामाद का हालचाल लेने उनके घर पहुँच गये। इस समय भाई जी के दामाद को असह्य कष्ट का अनुभव हो रहा था तथा वह छटपटा रहे थे। श्री भाई जी, जब अपने दामाद के घर पहुँचे तो उनके दामाद ने उचित अभिवादन के बाद, यह कहा कि बाबूजी! अब तो कष्ट सहा नहीं जा रहा है। अब तो ईश्वर से सदैव यही प्रार्थना करता रहता हूँ कि या तो हमें निरोग बना दें या मेरा शरीर छूट जाये अर्थात् मेरी मृत्यु हो जाये। यह कहते-कहते उसके आँखों से अश्रुधारा निकलना आरम्भ हो गई। आदरणीय भाई जी ने अपने गमछे से दामाद के आँसू पोछे एवं ढाढ़स बांधते हुये, यह कहा कि बेटा इतने निराश एवं अधीर होने की आवश्यकता नहीं है।

तदन्तर उन्होंने अपने दामाद से पूछा कि बेटा, तुम्हें इसके निदान का कोई उपाय यदि ज्ञात हो तो हमें बतलाओ। उनके दामाद ने तत्काल ही कहा कि बाबू जी! यदि खुटहा ग्राम के श्री राजेश्वरी बाबू के गुरुदेव औघड़ बाबा की कृपा हो जायें तो मैं अवश्य ही ठीक हो जाऊंगा। हमारे आदरणीय गुरुभाई जी ने जब अपने दामाद से औघड़ बाबा का पता पूछा, तो उनके दामाद ने बतलाया कि रहने वाले तो बिहार प्रान्त के पटना शहर के है परन्तु आप खुटहा ग्राम के श्री राजेश्वरी बाबू के यहाँ चले जाइये, आप को उनसे औघड़ बाबा का पूरा-पूरा पता लग जायेगा। आदरणीय भाई जी ने अपने दामाद से खुटहा ग्राम की स्थिति एवं वहाँ जाने का रास्ता पूछ कर कागज पर नोट किया एवं फिर साइकिल से खुटहा ग्राम की यात्रा आरम्भ की। जुलाई का महिना था एवं जिस समय वह खुटहा ग्राम की यात्रा आरम्भ कि सायंकाल के साढ़े पाँच बज रहे थे।

हमारे आदरणीय भाई जी सायंकाल करीब पौने सात बजे श्री राजेश्वरी बाबू के निवास स्थान पर पहुँच गये। उनके मकान के सामने काफी लम्बा–चौड़ा मैदान (सहन) था, उस पर करीब सत्तर स्त्री–पुरूष टाट पर बैठे थे। उनके मकान के पास ही एक नीम का पेड़ था, यह अपनी साइकिल उस पेड़ के सहारे खड़ा किये एवं फिर एक आदमी से पूछे कि राजेश्वरी बाबू कहाँ है। उस आदमी ने बतलाया कि उनके गुरुदेव औघड़ बाबा आये हुये है तथा शौच कर्म गाँव से बाहर गये हुये है। श्री राजेश्वरी बाबू भी उन्हीं के साथ है। वह अब आने ही वाले है "हमारे आदरणीय भाई जी, एकान्त में नीम के पेड़ के नीचे खड़े होकर, श्री राजेश्वरी बाबू एवं उनके गुरुदवे औघड़ बाबा के आने का इन्तजार करने लगे। जिस मैदान में स्त्री–पुरूष बैठे थे, उनके सामने करीब तीन फीट ऊँचाई पर उनके गुरुदेव के बैठने के लिए बहुत ही सुन्दर आसन बनाया गया है, जिस पर नित्य क्रिया से निवृत होकर आने के बाद उनके श्री गुरुदेव विराजमान होंगे। अपने आश्रम से सम्बन्धित भाई–बहनों को अपने इस आदरणीय गुरुभाई के सम्बन्ध में, यह बताना समीचीन होगा कि ये इस समय शिक्षा विभाग के प्रधानाध्यापक पद से सेवामुक्त (रिटायर्ड) हो चुके है तथा इनकी ध्यान स्थिति बड़ी ही उच्च स्तर की है। ये नीम के पेड़ के नीचे एकान्त में खड़े होकर औघड़ बाबा के आसन की तरफ देखते हुए यह विचार कर रहे थे कि कैसी विकट समस्या पैदा हो गई है, अपने सर्व समर्थ गुरुदेव को छोड़कर, मुझे एक औघड़ का इन्तजार करना पड़ रहा है। इसी समय पीछे से अपनी शिष्य मण्डली के कुछ लोगों के साथ नित्य क्रिया से निवृत होकर औघड़ बाबा आये एवं इनका हाथ पकड़ कर बोले कि महाशय! आप यहाँ क्या करने आये है। इनका हाथ पकड़े हुये वे आदरणीय भाई जी को अपने आसन के पास ले गये एवं पास ही आसन लगवाकर बैठने का अनुरोध किया। तदन्तर औघड़बाबा ने हमारे आदरणीय गुरुभाई से कहा कि मैं उपस्थित साधक समुदाय को कुछ समझाने के बाद फिर स्थिर मन से आप से बात करता हूँ। इसके बाद उन्होंने करीब एक घंटे तक प्रवचन किया एवं फिर सबको प्रसाद वितरण कर अपने–अपने निवास स्थान जाने का आदेश दिया। उसके बाद औघड़ बाबा ने हमारे आदरणीय गुरुभाई से आने का प्रयोजन जानना चाहा। हमारे आदरणीय भाई जी ने कहा कि हमारा एक दामाद जिसका नाम 'श्री फूलचन्द' है, करीब साढ़े चार साल से अपंग बन कर बिस्तर पर पड़ा है। श्री फूलचन्द का नाम सुनते ही वह और न बताने का इशारा करते हुये कहा कि, उसकी बात आप मत करिये। उसके रोग के निवारण के लिए आज से चार वर्ष पूर्व ही एक आदमी हमारे पास आया था, मैंने उसके इलाज के लिये, उसने हवन की सामग्री और दक्षिणा की माँग की थी। उसके बाद, वह फिर लौटा ही नहीं। मेरी इच्छा तो यही थी कि वह असह्य कष्ट जिन्दगी भर सहता रहे। मुझे क्या पता कि वह आप का दामाद है?

इसके बाद औघड़ बाबा ने आगे बतलाया कि अपने ननिहाल की कई लाख की सम्पत्ति हड़प लिया है, क्योंकि उसका ननिहाल लावल्द हो गया। उसे अपने ननिहाल की सम्पति में केवल मात्र अपना हिस्सा लेना चाहिये था, परन्तु उसने अपने हिस्से के अलावा पाँच और लोगो

का हिस्सा, बेईमानी एवं जबरदस्ती ले लिया है। अब भोगेगा कौन? उसने आगे कहा कि–

"मजा तुमने उड़ाया है, मुसीबत कौन झेलेगा।"

इतना कहने के बाद औघड़ महात्मा थोड़ी देर के लिये शान्त हो गया एवं फिर बोला कि आप आये हैं तो कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। उसने कहा कि आज तो रात्रि हो गई है कल प्रातः काल आइये, मैं आप के साथ फूलचन्द के घर चलूँगा। आदरणीय हमारे गुरुभाई ने कहा कि बाबा जी! कल गुरु पूर्णिमा का पर्व है, अतः अपने आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव भगवान की विधिवत् आरती पूजा से निवृत होने के बाद ही मैं आप के यहाँ की यात्रा आरम्भ करूँगा। इनकी बातों को सप्रेम सुनने के बाद और उनका चिन्तन करने के बाद उस औघड़ महात्मा ने कहा कि धन्य है तुम्हारी गुरुभक्ति और धन्य है सर्व समर्थ आप के योगी सम्राट। हमारे आदरणीय गुरुभाई की बातों को सप्रेम सुनने के बाद, वह औघड़ सिद्ध महात्मा काफी देर तक आँखे बन्द कर ध्यानस्थ रहा एवं उसके बाद जब उसने अपनी आँखे खोली, तो प्रसन्न मन से अश्रुपूरित नेत्रों से उपरोक्त बातें हमारे आदरणीय गुरुभाई से कही थी। उसके बाद उस औघड़ महात्मा ने कहा कि कल जब भी आओगे, मैं फूलचन्द के यहाँ चलने के लिये तैयार बैठा मिलूँगा। अगले दिन अपने मकान पर आराध्यदेव योगेश्वर द्वय के दिव्य स्वरूपों का खूब विधि–विधान से आरती पूजन करने के बाद श्री दिव्य स्वरूपों के अनेकानेक व्यंजनों का भोग लगाया, स्वयं परिवार के लोगों के साथ ग्रहण किये एवं उसके बाद करीब साढ़े दस बजे श्री राजेश्वर बाबू के घर गये, जहाँ औघड़ सिद्ध महात्मा विराजमान थे। वे करीब साढ़े ग्यारह बजे श्री औघड़ बाबा के घर निवास स्थान पर पहुँच गये। उचित अभिवादन के बाद, उस महात्मा के साथ आदरणीय गुरुभाई जी घर से निकल कर आये एवं अपने दामाद के घर तक जाने एवं आने का रिक्सा तय करके उस पर सवार हो गये। करीब एक घंटे की यात्रा के बाद दो साधक (औघड़ महात्मा के साथ हमारे भाई जी) श्री फूलचन्द जी के घर पहुँच गये। वहाँ, वह औघड़ घर के बाहर जो सीढ़ी थी उस पर आसन लगाकर बैठा तो वहीं काफी देर तक बैठा रहा। आराध्यदेव के आत्मांश अपने गुरुभाई बहनों से एक रहस्य की बात बताना अपना कर्तव्य समझते हुये यह स्पष्ट करना है कि हमारे आदरणीय गुरुभाई जी जब औघड़ के साथ रिक्शे से श्री फूलचन्द जी के घर की यात्रा आरम्भ किये, उसी समय उस औघड़ की वाणी थी कि आप तो यह कार्य ऐसे (उसने अपने दाहिने हाथ से जल्दी–जल्दी तीन बार चुटकी बजाते हुये) कर सकते थे। मुझे आप की आन्तरिक शक्ति का आभास है और दुनियाँ का कोई भी कार्य आप के लिये असम्भव नहीं है। आप कोई भी कार्य करने की ताकत रखते हैं, यह हकीकत है।

श्री औघड़ सिद्ध महात्मा आदरणीय गुरुभाई जी के अन्दर विद्यमान आराध्यदेव के अतुलनीय आध्यात्मिक प्रकाश को स्पष्ट देख रहा था। यही कारण था कि वह हमारे आदरणीय भाई जी का इतना मान–सम्मान कर रहा था। उसने फिर कहा कि आप यह स्पष्ट करें कि यह कार्य आप स्वयं क्यों नहीं करना चाहते। उस औघड़ सिद्ध महात्मा की बातों का उत्तर हमारे आदरणीय भाई जी ने देते हुए कहा, "महात्मन! यह परा सम्पदा आराध्यदेव की

धरोहर है एवं इसे रंचमात्र भी खर्च करने का अधिकारण हमें प्राप्त नहीं है। साथ ही मैं अनाधिकृत रूप से इसे प्रयोग नहीं करना चाहता क्योंकि यह कार्य मर्यादा रहित है।"

आदरणीय भाई जी की बात सुनकर, उस औघड़ सिद्ध महात्मा ने कहा कि योगेश्वर के शिष्य को ऐसा ही होना चाहिये और मेरा मन आप की बात सुनकर काफी प्रसन्न है। चलिये जल्दी आप के दामाद को स्वस्थ कर दिया जाये।

श्री फूलचन्द जी के घर के बाहर बैठकर औघड़ ने कहा कि मैं जो-जो सामान नोट करवा रहा हूँ, उसे आप अपने पैसे से लेकर आइये। करीब पाँच सौ रूपये का हवन एवं यज्ञ का सामान लेकर आदरणीय भाई जी जब आ गये तो वह उनके साथ घर में प्रवेश किया। लगभग दस फीट जमीन गौ के गोबर से लिपवाया एवं उसके सूख जाने पर एक स्थान पर बैठकर हवन एवं महामाया का अपनी विधि अनुसार करीब दो घंटे तक हवन एवं मंत्र जाप किया। उसके बाद दक्षिणा के रूप में श्री फूलचन्द का पैसा स्वीकार किया। एवं कहा कि तुम्हारा रोग आज से ही कम होना आरम्भ हो जायेगा एवं तुम पन्द्रह दिन के बाद पूर्ण रोग रहित हो जाओगे। यथार्थ भी ऐसा ही हुआ एवं आदरणीय गुरुभाई जी के दामाद श्री फूलचन्द जी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गये।

हमारे मिरजापुर जनपद के गुरु-भाई बहनों द्वारा महिने के प्रत्येक रविवार को सामूहिक सत्संग का कार्यक्रम किया जाता है और यह सामूहिक सतसंग का कार्य प्रत्येक रविवार को अलग-अलग गुरुभाई-बहनों के यहाँ किया जाता है एवं आराध्यदेव की इस क्षेत्र पर सूक्ष्म एवं स्थूल कृपायें भी खूब हो रही है। होनी भी चाहिये। भगवान की वाणी है:-

नाहं वसामि वैकुन्ठे, योगिराज हृदयेन च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्रैव तिष्ठामि नारद।।

□□□

सूचना

मार्च अंक के साथ ही ''सिद्धयोग'' के वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो जाता है। इसलिए वार्षिक ग्राहकों को अपना शुल्क फरवरी-मार्च में ही 'सिद्धयोग' सम्पादक के नाम प्रेषित कर देना चाहिये। जो व्यक्ति श्री रामनवमी महोत्सव पर सचाई आश्रम पधारने वाले हैं वे व्यक्तिगत रूप से अग्रिम शुल्क जमा करा सकते हैं। अन्यथा आचार्य श्री दासलाल ब्रह्मचारी जी के नाम 130 रूपये का मनी आर्डर भेज दें।

कागज के मूल्यों में निरंतर हो रही वृद्धि के कारण इस वर्ष शुल्क में 10 रूपये की अभिवृद्धि करके पत्रिका का वार्षिक शुल्क 130 रूपये कर दिया गया है। इस मामुली शुल्क वृद्धि की पृष्ठभूमि में निहित हमारी विवशता को पाठकवृन्द सहज भाव से लेंगे-ऐसा विश्वास है।

व्यवस्थापक - सिद्धयोग

श्रद्धा सुमन
श्रद्धा सुमन

छोड़ भटकता भव में हमको, गुरुवर तुम हो गये कहाँ?
तुम बिन हुआ अनाथ री रहा सारा भक्त–समाज यहाँ।
रोता प्राण चेतना रोती साँस–साँस रोती है।
अश्रु बहाकर तपन हृदय की शान्त नहीं होती है।।
आशा बनी निराशा जाती और धैर्य हिलता है।
निष्ठुर विधि से विवश मनुज का तर्क नहीं चलता है।।
किंकर्तव्यविमूढ़ भावना भटक रही है जहाँ–तहाँ।
तुम बिन हुआ अनाथ री रहा, सारा भक्त समाज यहाँ।।
हुआ अनाथ सन्ध्या वेदी, ज्ञान शून्य तकता है।
निराधार हो गयी साधुता, दर्शन कर सिर धुनता है।।
धर्म–कर्म हो गये निराश्रित, संस्कृत क्षीण हुई है।
मानवता की ध्वजा जगत में शीर्ष विहीन हुई है।।
जप, तप, योग साधना कहते हैं मेरे आगार कहाँ।
तुम बिन हुआ अनाथ री रहा सारा सन्त समाज यहाँ।।
ब्रह्म ज्ञान मग युग दृष्टा प्रभु योगेश्वर अविनाशी थे।
कमल पात से अनाशक्त हो जग–जल में वासी थे।।
सर्व भूत हित रत रह तुमने जन कल्याण किया है।
जन सेवा हित अवतरित आप योग प्रशिक्षण केन्द्र निर्माण किया।।
त्याग रूप, तुमसा उपकारी व्रती मिलेगा और कहाँ?
तुम बिन हुआ अनाथ री रहा, सारा भक्त समाज यहाँ।
यह अनुपम सिद्ध योग पत्रिका और उज्जवल कीर्ति भवन है।
ये मुमुक्षु सिद्ध योग आश्रम यश के विमल सदन है।।
इन विद्या, भवनों के आंगन में नव फूल खिलेंगे।
सदुपदेश कर ग्रहण तुम्हारे, जग आदर्श बनेंगे।
मधुमय फल आयेंगे तुमने वृक्ष लगाये जहाँ–जहाँ।
तुम बिन हुआ अनाथ री रहा सारा सन्त समाज यहाँ।।
जाये हे गुरुवर न अन्तर से वो न निकल सकेंगे।
ज्यों–ज्यों दिन बीतेंगे उर में गहरे और धसेंगे।।
सिद्ध योग मण्डल के उद्देश्य न मन्द पड़ेंगे।
हम आदर्श ध्वजा लेकर योग प्रचार करेंगे।।
हम दैवी सम्पदा भुवन में बिखरायेंगे यहाँ–वहाँ।
तुम बिन हुआ अनाथ री रहा सारा भक्त समाज यहाँ।।
हे कृपा प्रभु चरणों की सेवक, मतिमन्द महापुरुष है।
योग की विराट समुन्दर में से, एक बूंद पाने को व्याकुल है।।

वेदव्रत द्विवेदी
(उमापुर)

दुर्लभ दर्शन

डा. रवीन्द्र कुमार जौहरी लखनऊ

व्यक्ति के जीवन में कभी–कभी ऐसी अलौकिक घटना घटित होती है जैसे सिद्ध महात्माओं के अनायास दर्शन जिसके फलस्वरूप उसका जीवन धन्य हो जाता है और उसके जीवन के क्रिया कलाप ही बदल जाते हैं।

ऐसी ही घटना सन् 1954 के अक्टूबर माह में उन करुणासागर की कृपा से घटित हुई। उस समय मैं इंटरमीडिएट द्वितीय वर्ष का छात्र था और अपने कॉलेज– बलवंत राजपूत कॉलेज, आगरा की हॉकी टीम में खेलता था। रोज शाम को अभ्यास या मैच खेलने के निमित्त कॉलेज जाया करता था। एक दिन मैच नहीं हुआ दूसरी टीम खेलने नही आयी हमारी टीम को 'वॉकओवर' मिल गया। सभी लोग थोड़ा सा खेलकर खेल के मैदान से चले गये, मैं तीन चार अपने मित्र खिलाड़ियों के साथ कॉलेज के आडिटोरियम में, जहाँ किन्हीं महात्मा जी का प्रवचन चल रहा था, पीछे की सीट पर आकर बैठ गया और दूसरे दिन होने वाले मैच के बारे में बहुत ही धीमी आवाज में विचार विमर्श करने लगा– तभी प्रवचन दे रहे महात्मा जी ने उच्च स्वर में कहा कि आज भी यदि किसी को सिद्ध महात्मा के दर्शन करने हो तो यहाँ से थोड़ी ही दूर स्थित एत्मादपुर में कर सकता है। यह बात उन्होंने बड़े उच्च स्वर में व बहुत ही दृढ़ विश्वास से कही, हो सकता है उन्होंने 'श्री सिद्ध गुफा' का भी नाम लिया हो लेकिन मैं उसे सुन और समझ नहीं पाया।

हमारे घर में नित्य भगवान का आरती पूजन होता था और पिताजी स्व. डा. बी. पी. जौहरी अक्सर महात्माओं व ब्राह्मणों को घर लाकर बहुत सम्मान से भोजन आदि करवाते रहते थे। उन्हीं संस्कारों वश उस दिन जब उन महात्मा जी के मुख से किन्हीं 'सिद्ध महात्मा' के इतने नजदीक होने के विषय में सुना तो उनके दर्शन की अभिलाषा सीधी मन में उतर गयी और मन किसी प्रकार उनके दर्शनों के लिए व्यग्र रहने लगा। घर में सबसे छोटा और कम अवस्था (16 वर्ष) का होने के नाते इतनी दूर अकेले जाने की अनुमति मिलना असंभव था, इसलिये मैंने निर्णय किया कि मैं टूंडला से आने वाले रेलवे कर्मचारियों के सम्बंधी अपने सहपाठियों के साथ दर्शन करने चला जाऊ और दो घंटे बाद उधर से आगरा आने वाली गाड़ी से वापस आ जाऊँगा और ये सब मेरे खेल अभ्यास के समय में ही हो जायेगा घर पर किसी को पता भी नहीं लगेगा।

इसी योजना के तहत एक शाम को मैं अपने कुछ सहपाठियों के साथ एत्मादपुर रेलवे स्टेशन पहुँच गया और अपने साथियों के साथ स्टेशन मास्टर कक्ष में स्टेशन मास्टर सा. से पूछा कि यहाँ कोई सिद्ध महात्मा रहते हैं क्या वे उनके विषय में जानते हैं? उन्होंने खेल की

यूनीफार्म पहने बड़े कौतुहल से मुझे ऊपर से नीचे तक देखकर पूछा '' क्यों पढ़न में मन नाय लगत का? घरे जाओ और पढ़बे मे मन लगाओ।'' उनकी डाँट सुनकर हम तीनों चुपचाप उनके कक्ष से आकर गाड़ी में बैठ गये। ये वह जमाना था जब बड़ों का इतना आदर सम्मान होता था कि कोई भी बड़ा किसी अपरिचित छोटे को गलत काम करते देखकर डाँट सकता था और छोटों की हिम्मत पलटकर जवाब देने की नहीं होती थी।

घर लौटकर मन में बड़ा क्षोभ सा बना रहा जैसे कोई चीज खो गई हो और मिल न रही हो। कई दिन इसी उधेड़ बुन में निकल गये और एक दिन फिर मैं कुछ अन्य साथिओं के साथ एत्मादपुर के लिये ट्रेन से चल पड़ा। एक बोगी में हम 4–5 लड़के ही बैठे थे, कदाचित छलेसार स्टेशन निकल जाने के बाद मैंने देखा कि किनारे वाली सीट पर एक बहुत तेजस्वी विशालकाय जटाजूट महात्माजी विराजमान है जिनके हाथ में एक लम्बा सा चिमटा है और वे बीच वाली सीट पर बैठे हुये मुझे देख रहे है।

कहानियों में माँ अक्सर डराया करती थी कि बाबा पकड़कर ले जाते है उन्हीं कथाओं से मन में जटाजूट बाबाओं के प्रति एक डर सा बैठ गया था – जो उन बाबाजी को अपनी ओर निहारते देखकर और प्रबल हो उठा– कहीं पकड़ न ले जायें। वे मुझे देख रहे थे और मैं जानबूझकर उन्हें कनखियों से देखते हुये अपने को प्रकटरूप से उन्हें न देखकर उन्ही की सीट पर सामने बैठे अपने साथियों से बातें करने का अभिनय करने लगा। कुछ देर में वे मेरे और नजदीक सामने की ओर खिसक आये और उन्होंने पूछा 'तुम लोग कहाँ जा रहे हो'। उनके यों पूछने पर मैं और डर गया कि ये तो जरूर पकड़ने वाले बाबा ही हो सकते है जो गन्तव्य भी पूछ रहे है। मैंने झूठ बोल दिया 'हम लोग टूंडला जा रहे है। इस पर उनके चेहरे पर एक मुस्कान फैल गई जो आज भी मुझे स्पष्ट याद है और उन्होंने कहा – यदि सिद्ध महात्मा के दर्शन करने हो तो एत्मादपुर के स्टेशन मास्टर के पास जाना वे तुम्हें उनके पास ले जायेंगे।' ये बात खूब ध्यान से मैंने सुनी लेकिन भयवश उन्हें कोई प्रतिक्रिया नही दी। इतने में कदाचित स्टेशन आने के पहिले पटरी बदलने आदि पर जो आवाजें होती है होने लगी, मेरे साथी भी एत्मादपुर आ रहा है ऐसा कहकर चेतन्य हो गये। मैंने देखा वे महात्माजी भी उठकर खड़े हो गये और पीछे के दरवाजे की ओर बढ़ गये– एक पल को लगा स्वंय भगवान शंकर ही जा रहे हों लेकिन भयवश मैंने देखकर भी उधर न देखने की चेष्टा की और सोचने लगा कि शायद बाबाजी बिना टिकिट थे इसीलिये पीछे के दरवाजे से उतरने चले गये। गाड़ी रूकने के पहिले कौतुहलवश मैंने मुड़कर देखा तो वे अन्तरध्यान हो चुके थे– मेरे मन ने सोचा बिना टिकिट होने के कारण वे शायद चलती गाड़ी से उतर गये।

एत्मादपुर स्टेशन आने पर मैं अपने साथियों के साथ स्टेशन मास्टर कक्ष में पहुंचा, देखा वे ही स्टेशन मास्टर सा. टिकिट बाँट रहे है, उन्हें देखकर व उनकी लगायी डाँट को याद करके मैं उल्टे पांव ही लौटने लगा– तब उन्होंने पीछे मुड़कर पूछा –'ठहरो क्या बात है।' मैंने घबराकर कहा– आप तो सिद्ध महात्माजी को जानते ही नही है।

उन्होंने कहा, अरे! सिद्ध गुफा वाले बाबाजी?

अनायास ही मेरे मुख से निकल गया– हाँ हाँ वही। स्टेशन मास्टर सा. बोले, बैठ जाओ, गाड़ी निकाल दूं, फिर तुम्हें ले चलूंगा।

मैं बैठ गया, मेरे साथी ट्रेन से टूंडला चले गये। थोड़ी देर में अपना काम निपटाकर स्टेशन मास्टर सा. अपनी साइकिल के कैरियर पर मुझे बिठाकर कंकड़ों से बनी धूलधसरित सड़क से मुझे 5 मील के लगभग एत्मादपुर लाये और फिर कच्ची पगडंडी पर बागों के बीच से पैदल चलकर हम लोग एक बाग में पहुँचे जहाँ एक कच्चा कमरा बना था और पास में ही एक छप्पर वाला कमरा था। पेड़ के नीचे एक चारपाई बिछी थी उसके पास ही एक बोरे पर दो व्यक्ति बैठे थे। स्टेशन मास्टर सा. दूसरे बोरे पर बैठ गये, मैं भी बैठ गया।

थोड़ी देर में एक स्वस्थ शरीर वाले तेजस्वी पुरुष हाथ में पीतल की बाल्टी लिये हुये आये उनके साथ एक नवयुवक भी था। उन्हें देखकर स्टेशन मास्टर सा. ने अभिवादन किया, मैं चुपचाप आने वाले महात्मा जी जो गेरुआवस्त्र धारणकिये हों, बाल व दाढ़ी रखाये हों की कल्पना कर मैं मौन बैठा रहा। आने वाले तेजस्वी पुरुष चारपाई पर बैठकर पास बैठे लोगों से बात करने लगे। तभी मेरी दृष्टि अनायास ही कमरे में रखे दाढ़ी वाले बाबाजी के चित्र पर जाकर टिक गई। मुझे अचरज हुआ, यह तो उन्हीं महापुरुष का चित्र था जो मुझे ट्रेन में मिले थे। मुझे इस प्रकार देखते हुये देखकर, उन्होंने पूछा, लल्ला! क्या देख रहे हो। मेरे मुँह से अनायास निकला– ये बाबाजी कब आयेंगे? उन्होंने उस चित्र की ओर देखकर कहा– लल्ला, उन श्री प्रभुजी को शरीर छोड़े तो समय हो गया। मैंने आश्चर्य से कहा, मुझे तो अभी ट्रेन में मिले थे। अब वे तेजस्वी पुरुष उठकर सीधे बैठ गये और मुझे ऐसी दृष्टि से देखा जो मेरे आरपार निकल गई – फिर बहुत ही गंभीर आवाज में बोले – "हाँ वे अपने बच्चों को इसी प्रकार दर्शन देते रहते हैं उनका मार्गदर्शन करते हैं।"

अब मैंने देखा उनके शरीर से विचित्र आभा निकल रही थी– मैं अपने आप उनके चरणों पर झुक गया और गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने मुझे हृदय से लगा लिया।

*

स्थिरता निर्विकल्प समाधी है तथा एकाग्रता सविकल्प समाधी है। सविकल्प का तात्पर्य है कि उस अवधि में आवश्यक विचारों का मन क्षेत्र में अपना काम करते रहना। मन की स्थिरता सर्वथा भिन्न बात है। उसे एकाग्रता से मिलती जुलती स्थिति तो कहा जा सकता है, किन्तु दोनों का सीधा सम्बन्ध नहीं है। जिसका मन स्थिर हो उसे एकाग्रता का लाभ मिल सके अथवा जिसे एकाग्रता सिद्ध है उसे स्थिरता प्राप्त हो जाये, यह आवश्यक नहीं।

□ स्वामी पुरुषोतम तीर्थ

सिद्धयोग

एक समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने देवादिदेव महादेव से प्रश्न किया –

सर्वे जीवाः सुखैर्दुःखैर्मायाजालेन वेष्टिताः।
तेषां मुक्तिः कथं देव कृपया वद शङ्कर।।
सर्वसिद्धिकरं मार्गं मायाजालनिकृन्तनम्।
जन्ममृत्युजराव्याधिनाशनं सुखदं वद।।

(योगशिखोपनिषद 1/1–2)

'हे शंकर! सब जीव सुख–दुःखरूप मायाजाल से घिरे हुए हैं। हे देव! कृपया मुझसे यह कहिये कि मुक्ति किस प्रकार हो सकती है। ऐसा एक उपाय बतलाइये जिससे सब सिद्धियाँ प्राप्त हों, मायाजाल कट जाये और जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि का नाश हो जाये।'

इसके उत्तर में भगवान महादेव ने विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा से कहा–

नानामार्गैस्तु दुष्प्रापं कैवल्यं परमं पदम्।।
सिद्धिमार्गेण लभते नान्यथा पद्मसम्भव।

(योगशिखोपनिषद 1/3–4)

'हे पद्मसम्भव! कैवल्यरूप परम पद की प्राप्ति के अनेक उपाय कहे गये हैं, किन्तु उन समस्त उपायों से उसे प्राप्त करना सहज नहीं। एकमात्र सिद्धिमार्ग के द्वारा ही कैवल्य–पद आसानी से प्राप्त होता है। अन्य प्रकार से नहीं प्राप्त होता।' कैवल्य–प्राप्ति ही मानव–जीवन का उद्देश्य है। कैवल्य–मुक्ति होने पर ही दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। दुःख नष्ट हो जाने पर पुनः उसकी उत्पत्ति न होने को ही दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति कहते हैं। कैवल्य या मोक्ष प्राप्त होने पर जीव को पुनः जन्म–मृत्यु–जरा–व्याधिजनित दुःख नहीं भोग करना पड़ता। इसे प्राप्त करने का सहज पथ सिद्धिमार्ग या सिद्धयोग है।

यह सिद्धिमार्ग क्या है, यहाँ इस बात का विशदरूप से वर्णन करना आवश्यक है। जिस पथ से बिना कष्ट के योग प्राप्त होता है, उसी पथ को सिद्धिमार्ग कहते हैं। योगरूप सिद्धि प्राप्त करने का पथ सुषुम्ना नाड़ी है; जब इस नाड़ी से प्राणवायु प्रवाहित होकर ब्रह्मरन्ध्र में जाकर स्थित होता है तब साधक को जीव–ब्रह्मैक्य–ज्ञानरूप योग प्राप्त होता है। सर्वप्रथम गुरुद्वारा

शक्ति का संचार होने पर कुण्डलिनी-शक्ति जागरित होती है, और उसके बाद क्रमोन्नति के द्वारा योगलाभ होता है। जिस तरह तुम्हें बरतन, लकड़ी, जल और अग्नि इत्यादि किसी चीज को परिश्रम करके जुटाना नहीं पड़ता, केवल दाता की कृपा से ही उसके घर में तैयार अन्न से ही तुम्हारी क्षुधा शान्त हो जाती है, उसी तरह तुम्हें परिश्रम करके सब योगों की आधारस्वरूपा मूलाधारस्थिता कुण्डलिनी-शक्ति को जागरित करने के लिए योगशास्त्रोक्त आसन, मुद्रा और प्राणायामादि कुछ भी अस्वाभाविक ढंग से अनुष्ठान करने की जरूरत नहीं, केवल गुरुशक्ति के प्रभाव से ही कुण्डलिनी-शक्ति के जागरित हो जाने से स्वाभाविक रूप में योगमार्ग प्राप्त हो जाता है। इसी को 'सहज कर्म' कहा गया है। स्वभाव से जो होता है, वही वास्तव में सहज है। स्वाभाविक और अस्वाभिक भेद से योगपथ दो प्रकार का है। उनमें अस्वाभाविक उपाय अत्यन्त कष्टसाध्य तथा विघ्नसंकुल है। स्वाभाविक से विपरीत ही अस्वाभाविक है। जो स्वाभाविक है, अर्थात् जो स्वभावतः होता है, वही अनायाससाध्य और सुखद है, तथा उसमें किसी तरह की विपत्ति की भी सम्भावना नहीं। देखो, जब स्वाभावतः हमें निद्रा, क्षुधा और मलमूत्रादि का वेग होता है तब सो जाने, भोजन कर लेने और मलमूत्रादि त्याग देने से शारीरिक स्वस्थता तथा मानसिक आनन्द का अनुभव होता है। किन्तु निद्रा की इच्छा न मालूम होने पर भी जबर्दस्ती सो रहने से सुषुप्ति के स्थान में स्वप्न आया करता है और उससे शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता का अनुभव होता है। भूख नहीं है, फिर भी भोजन कर लिया, तो उससे अजीर्णतादि दोष के कारण शरीर में रोग होने की सम्भावना रहती है। भूख न रहने पर भोजन करने से वह उतना रुचिकर भी नहीं मालूम होता। मल का वेग नहीं हुआ, फिर भी काँखकर मल त्याग किया, इससे भविष्य में गुह्य रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है; किन्तु वेग होने के बाद मल त्याग करने पर शारीरिक और मानसिक आराम मालूम होता है। उसी तरह अन्तःकरण में स्वाभाविकरूप से आसन, मुद्रा और प्राणायामादि करने की इच्छा होने पर और उसके अनुसार क्रिया करने पर वह सहज और शान्तिप्रद हो जाती है। स्वभाव से ही जो हो जाता है, उसमें बाधा डालने पर बल्कि अनिष्ट की सम्भावना रहती है। जैसे, शोक में जिस समय रूलाई आती है, उस समय उसमें बाधा उपस्थित होने पर हृदय में भयानक चोट लगती है, किन्तु रो लेने पर शरीर और मन हल्का मालूम होता है। मल-मूत्रादि का वेग होने पर उसे रोक लेने से दुःख होता है और रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है, किन्तु उसका त्याग करते ही आराम मिलता है। उसी तरह गुरुशक्ति के प्रभाव से स्वभावतः जो आसन, मुद्रा और प्राणायाम आदि तथा नाना प्रकार से अंगसञ्चालन आदि करने की इच्छा होती है, उसमें उस समय बाधा डालने पर मानसिक अशान्ति मालूम होती है और शरीर को भी अच्छा नहीं मालूम होता।

जिस तरह वायु, पित्त और कफ इन तीनों के स्वभाव में विषमता होने पर वैद्य के पास जाना पड़ता है और वैद्य के बतलाये हुए औषध, पथ्य का व्यवहार करके स्वभाव की सहायता करने पर शरीर स्वभावतः ही नीरोग हो जाता है, उसी तरह सद्गुरु की कृपा से शक्तिसञ्चार

के द्वारा सिद्धिमार्ग प्राप्त होने पर एक मात्र गुरुपदिष्ट मन्त्रजप या ध्यान के द्वारा ही स्वभावत आसन, मुद्रा, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान इत्यादि सब योगाङ्ग अनायास साधित हो जाते हैं, इसके लिए विशेष परिश्रम करने या चेष्टा करने की आवश्यकता नहीं होती, अथवा गुरुसे इन सब आसन, मुद्रा और प्राणायाम आदि का स्वतन्त्ररूप से उपदेश लेने की भी जरूरत नहीं होती।

इसी पथ से क्रमशः अग्रसर होते-होते साधक शीघ्र ही योगसिद्धि प्राप्त करके कृतार्थ और धन्य हो जाता है। इस उपाय से स्वभावतः योगाङ्गादि साधनक्रम से जीव और ब्रह्म का ऐक्यज्ञान अथवा अखण्ड-चैतन्यानुभूति होती है और इसी को सिद्धिमार्ग या सिद्धयोग कहते हैं। परन्तु यह शक्तिसम्पन्न सद्गुरु की कृपा प्राप्त होने पर ही सम्भव है।

श्री प्रभु-चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, बलिया, उ. प्र.

इक फूल हूँ अपना लो प्रभु, कहीं बिखर न जाऊँ मुरझाकर,
चरणों में जगह बनाकर के, दृग कमल चढ़ाऊँ करुणाकर,
1. कांटो से भरा है तन भगवन, कालिख से रंगा मन मंदिर है,
पाप की गठरी सिर पर है और, जुल्मी पाँव में जंजीर है,
अपने ही जाल में उलझ गया, कुछ कह न पाऊँ शरमाकर,
चरणों में जगह——
2. ये सांस का सरगम तेरा है, प्रभु तुमसे मिली है ये जिन्दगानी,
जहां में आकर बहक गया हूँ, दागदार मेरी करुण कहानी,
मन ऊब चुका जग उपवन से, किसे दर्द सुनाऊँ अपनाकर,
चरणों में जगह——
3- सुख-दुःख के दोनो नदियों ने, कभी इधर किया, कभी उधर किया,
बहते उतराते डुबते मैं खुद, समझ न पाया किधर किया,
बचा है जीवन थोड़ा गुरुवर, अब तुझे बुलाऊँ अजनाकर,
चरणों में जगह——
4. गर मिलो, सुखद एहसास है, तेरी सूरत जिगर के पास हो,
ये ख्वाब नहीं हकीकत हो, कभी हिले न वह विश्वास हो,
राजेश बूंद तेरी रहमत का, बन तुममें समाऊँ रत्नाकर,
चरणों में जगह——
इक फूल हूँ——

गुंजन

डा. विजय सिंह

अनुभवगम्य न होते हुए भी जो थोड़ा बहुत हो जाता है, वह भी उस असीम, अव्यक्त अलख, परमचेतन की ही कृपा है। ऋतम्भरा प्रज्ञा वाली बुद्धि में प्रातिभ बोध सम्पन्न में, उस परम निगूढ़ अविचल निराकार का सतरूपता, आनन्दमयता, चिन्मयता गुणात्मक न होते हुए भी परासत्व में प्रकट होना, साधक के चित्त को आह्लाद युक्त कर सब ओर से समेट कर समाहित करता है। यह तदरूपता भाव प्रधान लोगों को इष्ट से तदरूपता, ज्ञान प्रधान कैवली भाव रूपी परमज्योति में प्रतिष्ठित कराना तथा निष्काम योगी को स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित कराता है।

श्री सद्गुरुदेव की कृपा महात्म्य इसलिये सर्वोपरि है कि वह साधक को सारे अन्तरायों से निर्विघ्नतापूर्वक निकाल कर अन्तर में गहनतम केन्द्र बिन्दु तक पहुँचाता है। तत्स्वरूप सद्गुरु की पहचान होने पर साधक स्वयं गुरुतत्व में अवस्थित अपने को पाता है।

अतः सामान्य रूप से सभी आध्यात्म आलोक से आलोकित महापुरुषों ने गुरु–महात्म्य को गद्–गद् कण्ठ से गाया है– घनादास के अन्तःकरण का गुंजन स्वयं में अनुभव करें –

बंदौ हरन भवफंद। गुरु कमलपद मकरंद।
सोय तिलक भाल लगाय। जाते कुअंक नसाय।। 1।।
अंजन सोई दिग दोय। जेहि दिव्य द्रिष्टि सुहोय।
अनुरागि हृदय लगाय। जेहि सांति उर ठहराय।

अर्थ सहज है, जिन सद्गुरु चरण कमलों की सुरभि संसार सागर से पार करने वाला है उन चरणों की हम वन्दना करते हैं। जो अनुराग पूर्वक इन चरण कमलों को हृदय में धारण करते हैं उन्हें परम शांति प्राप्त होता है। साधना का परम शांति ही है। भगवत गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है– "**त्यागात्‌ शांति अनन्तरम्**"। ज्ञान, ध्यान सबका विश्राम आत्मप्रतिष्ठा में पहुँच परम शांति लाभ में ही निहित है।

यह स्पंद, यह अनहद ही बुद्धि को झंकृत कर काव्यधारा बहाती है, अस्तु।

गुरुदेव सम नहिं देव। कोई बिरल जानत भेव।।
जो अवसि गुरुपद निष्ट। मति तासु अतिहि सरिष्ट।।
गुरु मूर्ति सर्वोदेव। किमि अपर देवन सेव।।
कैवल्य दायक ध्यान। जाकी कृपा बलवान।।
जारत अविद्या जाल। काटति अपरि में काल।।
है रीति पारस आन। गुरु करत आपु समान।।

—दोहा—

बिन गुरु भी निधि ना तरै, करै कोटि उपचार।
बनादास केवट बिना, नदी लहै किमि पार।।
गुरु सेवा सोलह कला, पूरन चन्द समानु।
साधन सारे दुइज से, अरु चौदसि लगि जानु।।
गुरु सेवा फल चंद दुति, नितही बढ़ती होति।
साधन सारे नखत से, पुनि खद्योत उदोति।।
भव उतरन की जाहि रुचि, सो सुचि सिष्य सयान।
बनादास मन, क्रम, वचन, गुरु खिदमत् रह लपटान।।

सद्गुरु दिव्यातिदिव्य सत्ता है यह भेद कोई–कोई कृतार्थ हुआ साधक ही जानता है। जिसकी एक–निष्ठा सद्गुरु चरण में हो वह इस महत रहस्य को जानता है। सद्गुरु के स्वरूप के ध्यान से अन्ततोगत्वा कैवली (कैवल्य समाधि) भाव मे प्रतिष्ठा तथा सर्व अज्ञानावरण का नाश उनकी कृपा से होता है। वे स्वयं महाकाल के काल हैं। जन्म–मरण के सर्व बन्धन के काटने वाले तथा पारस मणि जो लोहे को सोना स्पर्श से बना देता है उससे भी सहनीय है क्योंकि जिनके स्पर्श से साधक स्वयं सद्गुरु रूप में प्रतिष्ठित होता है ऐसे सद्गुरु की अनन्त महिमा का ज्ञान अन्तर–नाद में प्रस्फुटित हो बैखर में कणांश व्यक्त हो पाता है।

महिमा अमित गुरुदेव की कवि कौन पै बरनत बनै।
सच्चिदानन्द सरूप साँचेहु जाहि श्रुति नेति भनै।।

❑❑❑

पाठ से नहीं, पुरुषार्थ से गाड़ी चली

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि सृष्टि का विधान अटल है। जिस प्रकार विधान बनाने वाले विधायकों को स्वयं उसका पालन करना पड़ता है, वैसे ही ईश्वरीय अवतार और महापुरुष तो क्या स्वयंभगवान भी अपने बनाए विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इससे तो उनका सृष्टि संचालन ही अस्त–व्यस्त हो जायेगा। इस संबंध में उन लोगों को सचेत होकर अपना कर्म करना चाहिये जो सोचते हैं कि भगवान सब कर देंगे और स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें।

एक आदमी श्री हनुमान का उपासक था। एक बार वह बैलगाड़ी लिए कहीं जा रहा था। गाड़ी कीचड़ में फंस गई, वह वहीं खड़ा होकर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा और गाड़ी बाहर निकालने की कामना करने लगा। तभी उधर से आए एक पण्डित जी ने कहा – मित्र। हनुमान जी संजीवनी का पता न चलने पर पहाड़ ही उखाड़ लाए थे, तुम कम से कम गाड़ी को हाथ तो लगाओ। आदमी ने थोड़ी ताकत लगाई और बैलगाड़ी बाहर खींच ले गया।

देवता हों या महापुरुष वे तब तक फल नहीं देते, जब तक मनुष्य स्वयं उन आदर्शों के परिपालन के लिए समुद्यत नहीं होता। कर्म विधान पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है। ईश्वर उनका फल तब दे जब मनुष्य को बलवान बनाए, याचना भाव नहीं समर्पण भाव बढ़ाये।

सद्गुरु महिमा

– कन्हैया लाल शास्त्री, मुकुल, ललितपुर (उ. प्र.)

करें हम उन प्रभु के गुणगान। दया दे जिनकी जीवन–दान।।
यम के सेवक डरकर भागें, आवे निकट न काल।
हो जाता उद्धार मौत से, दुखिया होत निहाल।।
कष्ट का रहे न नाम निशान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
बिगड़े काम बना देते हैं, रखें स्वजन की बात।
पहुँचा देते उच्च शिखर पर, सरसा कर से गात।
सुमंगल का दें बना विधान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
दुश्मन भी तज वैरभाव को, आन मिलावे हाथ।
बाल छोड़िए अपने जन की, पर जान देते साथ।।
सुखद हो जाता अभ्युत्थान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
दुर्घटनायें टल जाती हैं, लिए नाम अभिराम।
धर्म कमाई आती है घर, आनन्द हो अविराम।।
सर्वदा रहता मुख मुसकान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
हर लेते अज्ञान–तिमिरघन, देकर ज्ञान–प्रकाश।
दर्श करा दें जगत पिता के, भर दें उर उल्लास।।
योगयोगेश्वर महिमावान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
जिसका नहीं सहायक कोई, उसको लें अपनायें।
दलितों द्वारक, मृदुफल दायक, सकल भाँति सुखदाय।।
द्वन्द का देते कर अवसान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
सच्चे मन से सुमरे जो जन, पहुँचे सद्गुरु पास।
व्यथा भेंट के पार लगावें, करें पूर्ण अभिलाष।।
बनादें सुन्दर सुखद विधान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता, सिद्धों के भी सिद्ध।
सद्गुरु भूषित अनन्त श्री हैं "रामलाल" वर बुद्ध।।
अशरण शरण दाता भगवान्। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
अजर–अमर हैं अन्तर्यामी, अविनाशी शिवरूप।
घट–घट वासी, योग–प्रकाशी, उद्धारक भव कूप।।
मृत्युञ्जय, सकल सौम्य निधान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।
'मुकुल' मनोरथ पूर्ण कर दें, प्रभुवर परम उदार।
कविता कर दें, लेख लिख दें, नौका खेवन हार।।
पतित पावन हैं करुणावान। करें हम उन प्रभु के गुणगान।।

प्राणायाम का शरीर पर प्रभाव

(1)

-: स्वामी कुवलयानन्द जी :-

प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति।
आचार्याणां तु केषाञ्चिदन्यत्कर्म न सम्मतम्॥

अर्थात् कुछ योगाचार्यों को प्राणायाम के सिवा कोई दूसरा मलशोधक साधन अभिप्रेत नहीं है। क्योंकि उनके मत में प्राणायाम से ही सारे मल सूख जाते हैं।

योगसाधना के आठ अङ्ग हैं, जिनमें प्राणायाम चौथा है। आसन इसके पहले आता है और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि पीछे। योग का उद्देश्य है शारीरिक एवं मानसिक समता स्थापित करना, जिससे आत्मा शरीर और मन के दासत्व से छूटकर अपनी अपरिच्छिन्न आनन्दमयी स्थिति को प्राप्त हो जाये। आसन शारीरिक क्रिया है और प्रत्याहार, धारणा आदि मानसिक साधन हैं। प्राणायाम की क्रिया उक्त दोनों प्रकार के साधनों के बीच का साधन है। यह शारीरिक भी है और मानसिक भी, क्योंकि इससे शरीर और मन दोनों का निग्रह होता है। योगसाधना में प्राणायाम का विशेष महत्व है। शारीरिक दृष्टि से प्राचीन काल के योगियों ने प्राणायाम को इतना गौरव दिया है कि उनमें से कुछ लोगों के मत में तो शरीर को स्वस्थ रखने के लिये तथा उसमें जितने प्रकार के मल इकट्ठे हो सकते हैं उनको निकाल बाहर करने के लिये किसी और मलशोधक क्रिया की आवश्यकता ही नहीं है। उनके मत में योगसाधना के लिये जिस शारीरिक समता की आवश्यकता है वह अकेले प्राणायाम से ही स्थापित हो सकती है। हमने लेख के प्रारम्भ में हठयोगप्रदीपिका का जो श्लोक उद्धृत किया है उसका यही तात्पर्य है। यदि हम प्राणायाम पर आधुनिक दृष्टि से विचार करें, जैसा कि हमारा प्रस्तुत निबन्ध में करने का विचार है, तो हमें पता लगेगा कि प्राणायाम से हमारा सारा शरीर ओजस्वी हो सकता है और इस प्रकार हम शारीरिक समता प्राप्त करने तथा उसे कायम रखने में समर्थ हो सकते हैं। इसके लिये हमारे पास पर्याप्त वैज्ञानिक प्रमाण हैं। मानसिक समता स्थापित करने में भी प्राणायाम को सहायक माना गया है। आधुनिक मानसशास्त्र के विदों का मत है कि काम, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, घृणा, शोक, अनुताप आदि मनोविकार ही मानसिक शान्ति को भङ्ग करने में प्रबल हेतु हैं। ये विकार हमारे मन के उस स्तर में उत्पन्न होते हैं जहाँ चेतनता अथवा ज्ञान अर्धजागृत रहता है। प्राणायाम के द्वारा हमारे मस्तिष्क के स्नायुजाल पर तथा हमारे मन के बोधपूर्वक व्यापारों पर ही हमारा अधिकार नहीं हो जाता, बल्कि उससे उपर्युक्त स्तर के भी द्वार खुल जाते हैं, जहाँ हमारा ज्ञान अर्धजागृत रहता है, और उस स्तर पर हमारा अधिकार हो जाता है। यही कारण है कि प्राणायाम का साधक अपने मनोविकारों को दबाकर मानसिक समता स्थापित करने में समर्थ होता है। मानसिक साम्य में हलचल पैदा करने वाले कारणों को

'मल' कहा गया है, क्योंकि वे प्रकाश रूप आत्मा को आच्छन्न कर देते हैं। इन मनोमलों को धोने तथा आत्मा को अपने निज स्वरूप में स्थित करने के लिये भगवान पतञ्जलि ने प्राणायाम को ही साधन बतलाया है और भाष्यकार व्यासजी ने भी उनका समर्थन किया है। यहाँ इस बात को जानकर पाठकों को कौतूहल होगा कि आधुनिक स्नायुचिकित्सक डा. बॉलोरी ने जो यूरोप भर में अपनी स्नायुचिकित्सा के लिये प्रसिद्ध है, अपने "A Message to the Neurotic World" (स्नायुरोगों से पीड़ित जनता के लिये एक सन्देश) नामक ग्रन्थ में जनता के हित के लिये इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि मनोविकारों का दमन करने और मानसिक तथा शारीरिक समता को प्राप्त करने के लिये प्राणायाम एक बहुत बड़ा साधन है।

प्रस्तुत निबन्ध का विषय 'प्राणायाम का शरीर पर प्रभाव' है, किन्तु हमने केवल यह बताने के लिये कि प्राणायाम से केवल शरीर को ही लाभ नहीं पहुँचता, संक्षेप में इस बात की ओर भी संकेत कर दिया है कि उसका मन पर कैसा प्रभाव पड़ता है। अब हम प्राणायाम से होने वाले शारीरिक लाभों का विस्तार से वर्णन करने को प्रस्तुत होते हैं। परन्तु ऐसा करने के पूर्व हम प्राणायाम प्रक्रिया की कुछ मुख्य–मुख्य बातों पर दिग्दर्शन कराना उचित समझते हैं।

प्राणायाम की प्रक्रिया

शारीरिक दृष्टि से प्राणायाम में केवल श्वासोपयोगी अङ्गों का ही संचालन एवं व्यापार होता है। प्राणायाम का अर्थ है श्वास की गति को कुछ काल के लिये रोक लेना। साधारण स्थिति में श्वासों की चाल इस प्रकार की होती है– पहले श्वास का भीतर जाना, फिर रुकना, फिर बाहर निकलना, फिर रुकना, फिर भीतर जाना, फिर रुकना, फिर बाहर निकलना इत्यादि। प्राणायाम में श्वास लेने का यह सामान्य क्रम टूट जाता है। श्वास (वायु के भीतर जाने की क्रिया) और प्रश्वास (बाहर जाने की क्रिया) दोनों ही गहरे और लम्बे होते हैं और श्वासों का विराम अर्थात् रुकना तो इतनी अधिक देर तक होता है कि उसके सामने सामान्य स्थिति में हम जितने काल तक रुकते हैं वह तो नहीं के समान और नगण्य ही है। योग की भाषा में श्वास खींचने को 'पूरक' कहते हैं, बाहर निकालने को 'रेचक' और रोक रखने को 'कुम्भक' कहते हैं। प्राणायाम कई प्रकार के होते हैं। और जितने प्रकार के प्राणायाम हैं उन सब में पूरक, रेचक और कुम्भक भी भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं। पूरक मुँह से करना चाहिये अथवा नासिका से, और नासिका से करने में हम दाहिने छिद्र का अथवा बायें का अथवा दोनों का ही उपयोग कर सकते हैं। रेचक दोनों नासारन्ध्रों से अथवा एक से ही करना चाहिये। कुम्भक पूरक के भी पीछे हो सकता है और रेचक के भी, अथवा दोनों के ही पीछे न हो तो भी कोई आपत्ति नहीं। पूरक, कुम्भक और रेचक के इन्हीं भेदों को लेकर प्राणायाम के अनेक प्रकार हो गये हैं।

पूरक, कुम्भक और रेचक कितनी–कितनी देर तक होना चाहिये, इसका भी हिसाब रखा गया है। यह आवश्यक माना गया है कि जितनी देर तक पूरक किया जाये उससे चौगुना समय कुम्भक में लगाना चाहिये और दूना समय रेचक में, अथवा दूसरा हिसाब यह है कि

जितना समय पूरक में लगाया जाये उससे दूना कुम्भक में और उतना ही रेचक में लगाया जाये। प्राणायाम की सामान्य प्रक्रिया का दिग्दर्शन कराकर अब हम प्राणायाम सम्बन्धी उन खास बातों पर विचार करेंगे जिनसे हम ये समझ सकेंगे कि प्राणायाम का हमारे शरीर पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

पूरक करते समय जब कि साँस अधिक-से-अधिक गहराई के साथ भीतर खींची जाती है, तथा कुम्भक के समय भी, जिसमें बहुधा साँस को भीतर रोकना होता है, आगे की पेट की नसों को सिकोड़ कर रखा जाता है। उन्हें कभी फुलाकर आगे की ओर नहीं बढ़ाया जाता, जैसा कि पाश्चात्य लोग बहुधा राय दिया करते हैं। रेचक भी, जिसमें साँस को अधिक-से-अधिक गहराई के साथ बाहर निकालना होता है, पेट और छाती को जोर से सिकोड़ने से ही बनता है। कुम्भक करते समय मूलबन्ध साधने के लिये गुदा को सिकोड़ना पड़ता है और उड्डीयानबन्ध के लिये पेट को भीतर की ओर खींचा जाता है तथा जालन्धरबन्ध के लिये ठोडीसे छाती को दबाया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास के लिये कोई सा उपयुक्त आसन चुन लिया जाता है जिससे सुखपूर्वक पालथी मारी जा सके और मेरुदण्ड सीधा रह सके।

एक विशेष प्रकार का प्राणायाम होता है जिसे **भस्त्रिका प्राणायाम** कहते हैं, उसे खास तौर पर बतलाने की आवश्यकता है। उसके दो भाग होते हैं, जिनमें से दूसरे भाग की प्रक्रिया वही है जो ऊपर कही गयी है। पहले भाग में साँस को जल्दी-जल्दी बाहर निकालना होता है, यहाँ तक कि एक मिनट में 240 साँस बाहर आ जाते हैं। योग में एक श्वास की क्रिया होती है जिसे **कपालभाति** कहते हैं। भस्त्रिका के पहले भाग में ठीक वैसी ही क्रिया की जाती है।

यहाँ तक हम सामान्य रूप से प्राणायाम की प्रक्रिया की उन मुख्य-मुख्य बातों को बतला चुके जिसे हम, योग साधना के इस अंश का हमारे शरीर पर कैसा प्रभाव पड़ता है, समझ सकें। परन्तु प्राणायाम सम्बन्धी शरीर विज्ञान को समझने के पूर्व हमें सामान्य शरीर विज्ञान पर सरसरी तौर पर एक दृष्टि डालनी होगी, जिससे हम प्राणायाम सम्बन्धी शरीर विज्ञान को अच्छी तरह से समझ सकें।

सामान्य शरीर विज्ञान

सामान्य शरीर विज्ञान में मानवशरीर के अन्दर काम करने वाले भिन्न-भिन्न अङ्गसमूहों के व्यापारों का विचार किया जाता है। इन अङ्गसमूहों में प्रधान ये हैं-स्नायुजाल, ग्रन्थिसमूह, श्वासोपयोगी अङ्गसमूह, रक्तवाहक अङ्गसमूह और आहार का परिपाक करने वाला अङ्गसमूह।

सर्वप्रथम स्नायु जाल का ही विचार करें। इसे हम एक बड़े बिजली घर की उपमा दे सकते हैं जहाँ बिजली पैदा होती है और जिसमें बहुत से तार लगे रहते हैं जो उस बिजली घर से सम्बद्ध प्रत्येक कारखाने की भिन्न-भिन्न मशीनों को विद्युत्प्रवाह पहुँचाते हैं। मस्तिष्क,

मेरुदण्ड, और उससे सम्बद्ध अन्य स्नायु, इन्हीं को बिजली घर समझना चाहिये। मस्तिष्क से अथवा मेरुदण्ड से निकलने वाली शिराएँ ही इस मानवशरीर रूपी कारखाने की कलों को बिजली पहुँचाने वाले तार है। बिजली से चलने वाले प्रत्येक व्यवस्थित कारखाने में प्रत्येक छोटी–बड़ी मशीन और उन मशीनों का एक–एक पुर्जा बिजली घर से तारों द्वारा लाये हुए विद्युत्प्रवाह से सञ्चालित होता है। इसी प्रकार इस मानव शरीर रूपी कारखाने के प्रत्येक अङ्ग का संचालन मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड से निकलने वाली शिराओं के द्वारा पहुँचायी हुई स्फूर्ति से होता है। यदि बिजली देने वाले मूलस्रोत (बिजलीघर) में ही कोई खराबी हो जाये अथवा तारों में प्रवाहित होने वाले विद्युत्प्रवाह में ही किसी प्रकार की रुकावट आ जाये तो शरीर की सारी क्रियाएँ बन्द हो जायेंगी। इसी प्रकार यदि मस्तिष्क तथा स्नायुओं में कोई विकार हो जाये अथवा शिराए इतनी निर्बल हो जायें कि वे स्फूर्ति न पहुँचा सकें तो शरीर की क्रिया बन्द हो जायेंगी। इस प्रकार शरीर की क्रियाओं में बन्द हो जाने का क्या परिणाम होगा, यह सामान्य पाठकों की समझ में नहीं आ सकता। हमारी पाचन क्रिया, हमारा रक्तसंचार, यहाँ तक कि हमारा श्वासोच्छ्वास भी उसी स्फूर्ति से संचालित एवं नियन्त्रित होता है जो इन–इन क्रियाओं से सम्बन्धित अङ्गों को मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड से प्राप्त होती है। यदि नाड़ियों द्वारा संचारित स्फूर्ति प्रवाहित ही न हो अथवा प्रवाहित होकर भी अपने निर्दिष्ट स्थान तक न पहुँचे तो जीवन की सारी क्रियाएं बन्द हो जायेंगी और कोई आश्चर्य नहीं कि जीवन की ज्योति भी विलीन हो जाये स्नायुजाल का यह सर्वोपरि माहात्म्य है।

ऊपर बिजली घर का जो दृष्टान्त दिया गया है उसके सम्बन्ध में एक बात और ध्यान में रखने की है। वह यह है कि बिजली घर में बिजली पैदा होती रहे और तार उसे अपने–अपने निर्दिष्ट केन्द्रों को पहुँचाते रहें, परन्तु यदि बिजली के प्रवाह में यथेष्ट शक्ति नहीं है तो उस बिजली के द्वारा संचालित मशीनें चल नहीं सकेंगी। मशीन को चलाने के लिये बिजली में ताकत भी पूरी होनी चाहिये। मानवशरीर रूपी कारखाने में यह बिजली की शक्ति endocrine glands नामक ग्रन्थिसमूह से स्त्रवित होने वाले द्रव पदार्थों पर निर्भर करती है। सारा स्नायुजाल अच्छी हालत में होने पर भी यदि उपर्युक्त द्रव पदार्थ पर्याप्त मात्रा में न मिले और जिस प्रकार के होने चाहिये वैसे न हों तो स्नायुगत स्फूर्ति और आगे चलकर स्वयं स्नायुसमूह क्षीण हो जायेगा। परिणाम यह होगा कि शरीर की क्रियाएं और प्राणों का व्यापार सब मन्द और क्षीण पड़ जायेंगे। उदाहरण के लिये इनमें से एक ग्रन्थि Thyroid को ही लीजिये। उपर्युक्त endocrine नामक ग्रन्थियों में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध है, यद्यपि स्त्रियों और पुरुषों दोनों की जननेन्द्रिय सम्बन्धी ग्रन्थियाँ, तथा वह ग्रन्थि जिससे नाक और कफ स्त्रवित होता है (pituitary gland) और इसी प्रकार की अन्य ग्रन्थियाँ भी कम महत्त्व की नहीं हैं। किसी भी स्वस्थ मनुष्य की Thyroid ग्रन्थि यदि निकाल ली जाये तो उसकी आँखें पीली पड़ने लगेंगी, गाल पिचकने लगेंगे, मांसपेशियाँ ढीली अथवा क्षीण हो जायेंगी, बाल पकने लगेंगे और वह मनुष्य अवस्था से पूर्व ही वृद्ध हो जायेगा। Thyroid को फिर से लगा दो और उस मनुष्य के

अन्दर जवानी की नयी उमंगें पुनः लहराने लगेंगी। बुढ़ापे के सारे चिन्ह मिट जायेंगे, वह मनुष्य सीधा चलने लगेगा, सारी वस्तुएं सुन्दर मालूम होने लगेंगी और जीवन फिर से सुखमय बन जायेगा। इससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि endocrine ग्रन्थिसमूह का शरीर विज्ञान में उतना ही महत्त्व है जितना स्नायु जाल का है।

मानवशरीर विज्ञान के अध्ययन से यह बात स्पष्ट समझ में आ जाती है कि इन दोनों अङ्गसमूहों को, जो मानव शरीर के अत्यन्त उपयोगी एवं मूल्यवान अवयव है, पर्याप्त मात्रा में रुधिर मिलता रहे। इसके लिये ये रक्तवाहक अङ्गसमूह के आश्रित हैं और जो रुधिर मिले वह अच्छा मिले इसके लिये ये श्वासोपयोगी एवं पाकोपयोगी अङ्गसमूह के अधीन है। रक्तवाहक अङ्गसमूह में इतने अङ्ग हैं– हृदय, हृदय से अन्य अङ्गों को रक्त ले जाने वाली तथा अन्य अङ्गों से वापिस हृदय को रक्त ले आने वाली नाड़ियां तथा उक्त दोनों प्रकार की नाड़ियों को जोड़ने वाली अति सूक्ष्म शिराएँ। इस अङ्गसमूह का कार्य है मानवशरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रक्त पहुँचाना। स्नायुजाल तथा Endocrine ग्रन्थिसमूह को यदि यथेष्ट परिमाण में रक्त न मिले तो उनका व्यापार ही शिथिल हो जायेगा और परिणाम वही होगा जो ऊपर बताया जा चुका है।

इसी प्रकार रक्तवाहक अङ्गों में से जो रक्त प्रवाहित हो रहा है वह यदि शुद्ध और उत्तम न हो तो उक्त अङ्गों के स्वस्थ रहने से भी कोई लाभ नहीं है। उदाहरणतः रक्त में यदि विषैले तत्व भरे हुए हैं तो रक्तवाहक अङ्गों का ठीक तरह से काम करना भी अपार्थ ही है। अतः रक्त भी उत्तम होना चाहिये, और इसके लिये शरीर श्वासोपयोगी एवं पाकोपयोगी अङ्गों के आश्रित है।

उत्तम रक्त वह है जिसमें Oxygen नामक प्राणवर्धक तत्व पर्याप्त मात्रा में हो और जिसमें अङ्गों को परिपुष्ट करने वाले तत्व भी हों। Oxygen हमें उस वायु से मिलता है जिसे हम साँस के द्वारा भीतर ले जाते हैं। और पुष्टिकारक तत्व उस अन्न–जल से जिसे हम आहार के रूप में ग्रहण करते हैं। हमारे श्वासोपयोगी अङ्ग जितने स्वस्थ होंगे उतना ही ऑक्सिजन हमारा रक्त ग्रहण कर सकेगा। श्वास की क्रिया दोषयुक्त होने से रक्त में ऑक्सिजन पर्याप्त मात्रा में नहीं पहुँच सकेगा और जो अङ्ग इस प्रकार के रक्त से पुष्ट होंगे वे क्रमशः निर्बल और क्षीण हो जायेंगे। इसी तरह हम कितने ही स्वादिष्ट एवं पुष्टिकारक पदार्थ खायें–पियें, किन्तु यदि हमारा पाकोपयोगी अङ्गसमूह ठीक काम नहीं कर रहा है तो उनका परिपाक नहीं होगा और फलतः उनका रस बनकर हमारे शरीर को पुष्ट नहीं कर सकेगा, और उसमें का बहुत–सा अंश व्यर्थ जायेगा जिससे रक्त को पुष्टिकारक तत्व बहुत ही स्वल्प परिमाण में मिलेगा। अतः यदि हम चाहते हैं कि हमें सदा शुद्ध एवं उत्तम रक्त मिलता रहे तो इस बात की आवश्यकता है कि हमारे श्वासोपयोगी और पाकोपयोगी अङ्ग ठीक तौर से काम करते रहें।

यदि हमारे श्वासोपयोगी अङ्गसमूह और आमाशय ठीक काम नहीं करेंगे तो ऑक्सिजन तथा पुष्टिकारक तत्वों के न मिलने से हमारा रक्त केवल विगुण ही होगा अर्थात् उत्तम नहीं होगा सो बात नहीं है, अपितु उसमें निरर्थक तत्व भर जायेंगे जो विषैले होते हैं। हम इसका खुलासा आगे करेंगे। शरीर में कार्बन डाइ ऑक्साइड नामक गैस निरन्तर बनता रहता है।

जिसका रक्त संचार ठीक है उसकी रक्त वाहक नाड़ियां इस विषैले गैस को फेफड़ों में ले जाती है और वहाँ उसे नष्ट कर देती है। परन्तु यदि रक्तसंचार ठीक नहीं हुआ तो यह निरर्थक तत्व भिन्न–भिन्न अङ्गों में जमा होकर विष फैलायेगा। इसी प्रकार जिन पदार्थों को हम खाते पीते हैं उनके हजम हो जाने पर बहुत–सा निस्सार तत्व बच रहता है जो मल के रूप में बाहर निकल जाता है। हम जो कुछ खाते–पीते हैं उसका परिपाक जितना ही कम होता है और उसका रस जितना ही कम बनता है उतना ही अधिक अंश उसका निरर्थक हो जाता है। और यदि हमारी आँतें जो शरीर रचना की दृष्टि से आमाशय की नली के अन्तर्गत ही हैं ठीक तरह से काम नहीं करती तो यह मल बड़ी आँत में जिसे अंग्रेजी में कोलन कहते हैं अथवा छोटी आँत में भी कई दिनतक ठहर जाता है और उससे अनेक प्रकार के भयङ्कर विषैले गैस पैदा हो जाते हैं। ये विषैले गैस आँतों के भीतर से रक्त के प्रवाह में घुस जाते हैं और रक्त को विषाक्त कर देते है और वह विषाक्त रक्त समस्त अङ्गों में संचारित होकर सारे शरीर को दूषित कर देता है।

हम ऊपर बता चुके हैं कि किस प्रकार फेफड़ों और आँतों के द्वारा मल को बाहर निकालने का काम होता है। गुर्दा भी इसी प्रकार का काम करता है। कुछ निरर्थक तत्व जो स्वभाव से ही विषैले होते हैं मूत्र के साथ शरीर के बाहर निकल आते हैं। यदि गुर्दे का काम ठीक तरह से न हो तो ये विषैले तत्व शरीर के भीतर ही रह जाते हैं और विशेषकर शरीर की सन्धियों में आश्रय पा जाते हैं। जिन लोगों को गठिये का रोग होता है उनका गुर्दा अवश्य खराब होता है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि रक्त का अच्छा होना फेफड़ों और आमाशय की निर्दोषता पर निर्भर है। और विषैले तत्वों से मुक्त होने के लिये उसे मल को बाहर निकालने वाले अङ्गों पर निर्भर करना पड़ता है।

यहाँ तक हम मानवशरीर के भीतर कार्य करने वाले मुख्य–मुख्य अङ्गसमूहों की कुछ मोटी–मोटी बातें समझ चुके। अब हम इस बात का विचार करेंगे कि इन अङ्गों के कार्य पर प्राणायाम का कैसा प्रभाव पड़ता है।

प्राणायाम का शरीर पर प्रभाव

मल को बाहर निकालने वाले अङ्गों में हम देखते हैं कि आँतें और गुर्दा तो पेट के अन्दर है और फेफड़े छाती के अन्दर हैं। साधारण तौर पर साँस लेने में उदर की मांसपेशियां क्रमशः ऊपर और नीचे की ओर जाती हैं, जिससे आँतों और गुर्दे में भी निरन्तर हलचल और हल्की–हल्की मालिश होती रहती है। प्राणायाम में पूरक एवं रेचक तथा कुम्भक करते समय यह हलचल और मालिश और भी स्पष्टरूप से होने लगती है। इससे यदि कहीं रक्त जमा हो गया हो तो इस हलचल के कारण उस पर जोर पड़ने से वह हट सकता है। यही नहीं, आँतों और गुर्दे के व्यापार को नियन्त्रण में रखने वाले स्नायु और मांसपेशियां भी सुदृढ़ हो जाती हैं। इस प्रकार आँतों और गुर्दे को प्राणायाम करते समय ही नहीं, बल्कि शेष समय में भी लाभ पहुँचता है। स्नायु और मांसपेशियाँ जो एक बार मजबूत हो जाती हैं वे फिर चिरकाल तक मजबूत ही बनी रहती हैं और प्राणायाम से अधिक स्वस्थ हो जाने पर आँतें और गुर्दा अपना कार्य और भी

सफलता के साथ करने लगते है।

यही हाल फेंफड़ों का है। श्वास की क्रिया ठीक तरह से चलती रहे, इसके लिये आवश्यकता है श्वासोपयोगी मांसपेशियों के सुदृढ होने की और फेंफड़ों के लचकदार होने की। शारीरिक दृष्टि से प्राणायाम के द्वारा इन मांसपेशियों और फेंफड़ों का संस्कार होता है। छाती को दिन में कई बार अधिक–से–अधिक फुलाने से और फेंफड़ों को अधिक–से–अधिक फैलाने से इन अङ्गों को अपना कार्य सन्तोषप्रद रीति से करने की उत्तम शिक्षा मिलती है। आँतों और गुर्दे के समान फेंफड़ों को भी थोड़ी देर तक साधने से उन्हें दिन के शेष भाग में भी अच्छी तरह से काम करने के लिये बल मिल जाता है और कार्बन डाइ आक्साइड नामक दूषित गैस का भी भली भाँति निराकरण हो जाता है। इस प्रकार प्राणायाम आँतों, गुर्दे तथा फेंफड़ों के लिये, जो शरीर से मल को निकाल बाहर करने के तीन प्रधान अङ्ग हैं, बड़ी मूल्यवान कसरत है। आहार का परिपाक करने वाले और रस बनाने वाले अङ्गों पर भी प्राणायाम का अच्छा असर पड़ता है। अन्न–जल के परिपाक में आमाशय, उसके पृष्ठभाग में स्थित pancreas नामक ग्रन्थि और यकृत् मुख्य रूप से कार्य करते है और प्राणायाम मे इन सबकी कसरत होती है। क्योंकि प्राणायाम में उदर और वक्षःस्थल के बीच का स्नायु, जिसे अंग्रेजी में Diaphragm कहते हैं, और पेट की मांसपेशियाँ, ये दोनों ही बारी–बारी से खूब सिकुड़ते है और फिर ढीले पड़ जाते है जिससे उपर्युक्त पाकोपयोगी अङ्गों की एक प्रकार से मालिश हो जाती है। जिन्हें अग्निमान्द्य और बद्धकोष्ठता की शिकायत रहती है, उनमें से अधिक लोगों के जिगर में सदा ही रक्त जमा रहता है और फलतः उसकी क्रिया दोषयुक्त होती है। इस रक्तसंचय को हटाने के लिये प्राणायाम एक उत्तम साधन है। प्राणायाम से अस्वस्थ Pancreas को बड़ी अच्छी उत्तेजना मिलती है और उसके दोष दूर होते है। हमने अपने चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव में कई रोगियों के पेटसम्बन्धी रोगों को मुख्यतया प्राणायाम के अभ्यास से निर्मूल होते देखा है। पाकोपयोगी अङ्गों के ठीक तरह से काम करने पर रस भी खूब बनता है और रक्त मे आवश्यक पुष्टिकारक तत्वों की प्रचुरता हो जाती है।

किसी भी मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसकी नाड़ियों में प्रवाहित होनेवाले रक्त को ऑक्सिजन प्रचुर मात्रा में मिलता रहे। योगशास्त्र में बतायी हुई पद्धति के अनुसार प्राणायाम करने से रक्त को जितना अधिक ऑक्सिजन मिल सकता है उतना अन्य किसी व्यायाम से नहीं मिल सकता। इसका कारण यह नहीं है कि प्राणायाम करते समय मनुष्य बहुत–सा ऑक्सिजन पचा लेता है, बल्कि उसके श्वासोपयोगी अङ्गसमूह का इतना अच्छा व्यायाम हो जाता है कि उससे मनुष्य को चौबीस घंटे मदद मिलती है। यह लोगों का भ्रममात्र है कि प्राणायाम में ऑक्सिजन हमें बहुत अधिक मात्रा में मिलता है। हम समझायेंगे कि उन लोगों की यह धारणा भ्रम मूलक क्यों है? किसी भी प्राणायाम की पूरी एक आवृत्ति करने में कम–से–कम एक मिनट तो लगना ही चाहिये। सामान्यरूप से साँस लेते समय एक साधारण मनुष्य एक मिनट में लगभग 7000 घन सेंटीमीटर (अर्थात 427 घन इंच) वायु अपने

भीतर ले जाता है। वहीं मनुष्य प्राणायाम के समय एक मिनट में अधिक–से–अधिक 3700 घन सेंटीमीटर (अर्थात् करीब 222 घन इंच) वायु भीतर ले जा सकेगा। इस प्रकार जितनी हवा हम साधारण परिस्थिति में भीतर ले जाते हैं उससे कहीं कम हम प्राणायाम करते समय ले जायेंगे, और उसी परिमाण में हम ऑक्सिजन भी कम पचा सकेंगे। अपने 'योगमीमांसा' नामक ग्रन्थ में हम अनुभवमूलक प्रमाणों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर चुके हैं कि हम जितना ऑक्सिजन पचाते हैं उसकी मात्रा श्वास रोकने के काल पर निर्भर नहीं करती। इसलिये जब हम श्वास को आधे ही मिनट के लिये रोकते हैं उस समय भी साधारण परिस्थिति की अपेक्षा हम बहुत अधिक ऑक्सिजन नहीं पचा जाते। इस प्रकार यह धारणा कि प्राणायाम के समय हम अधिक ऑक्सिजन पचाते हैं भ्रमात्मक है, यह बात स्पष्ट हो जाती है।

तब रक्त को ऑक्सिजन से समृद्ध करने के लिये प्राणायाम करने से क्या लाभ है? इस प्रश्न का उत्तर हम नीचे देते हैं। यद्यपि जितने काल तक मनुष्य प्राणायाम करता है उतने समय तक वह ऑक्सिजन कम पचाता है, तथापि प्राणायाम के अभ्यास से उसके श्वासोपयोगी अङ्ग ऐसे सध जाते हैं कि दिन के शेष भाग में भी श्वास की क्रिया बहुत उत्तम ढंग से चलती है और जितना ऑक्सिजन वह सामान्य तौर पर पचाता उससे कहीं अधिक वह दिन भर में पचा लेगा।

जो लोग अपने श्वास की क्रिया को ठीक करने के लिये किसी प्रकार का अभ्यास नहीं करते वे अपने फेफड़ों के कुछ अंशों से ही साँस लेते हैं, शेष अंश निकम्मे रहते हैं। इस प्रकार निकम्मे रहनेवाले अंश बहुधा फेफड़ों के अग्र भाग होते हैं। इन अग्रभागों में ही जो निकम्मे रहते हैं और जिन में वायु का संचार अच्छी तरह से नहीं होता, राजयक्ष्मा के भयङ्कर कीटाणु बहुधा आश्रय पाकर बढ़ जाते हैं। यदि प्राणायाम के द्वारा फेफड़ों के प्रत्येक अंश से काम लिया जाने लगे और उनका प्रत्येक छिद्र दिन में कई बार शुद्ध हवा से धुल जाया करे तो फिर इन कीटाणुओं का आक्रमण असम्भव हो जायेगा।

(शेष अगले अंक में)

अच्छे और बुरे का द्वन्द्व अज्ञान से ही उत्पन्न होता है। द्वन्द्व–बद्ध अज्ञानाच्छादित आत्मा, भले एवं बुरे दोनों के चुंगल में फँसा रहता है। वह स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत एवं मानसिक जगत के भले और बुरे की इच्छा करता है। अतः उस अपरिच्छिन्न अवस्था में नहीं पहुँच पाता, जो जीवन के अनन्त एवं परिवर्तन रहित पार्श्व में प्राप्तव्य है। अतः द्वैत के सीमा क्षेत्र के परे अनन्त की खोज करनी चाहिये।

शिष्य से कराया पत्र का इंतजार

—: जगदीश राय बंसल :—

श्री प्रयाग राज की भूमि गंगा मैया, यमुना मैया और सरस्वती मैया का संगम स्थल है। यहाँ प्रत्येक वर्ष माघ मेला लगता है। इस पावन पर्व पर हमारे, आपके और प्राणी मात्र के भाग्य विधाता योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज, योग प्रचारार्थ इस मेले में कैम्प लगा कर संगम स्नान, आरती–पूजा, गीता पाठ एवं यौगिक प्रवचनों से जीवन सार्थक बना देते थे।

प्रस्तुत प्रसंग सन् 1962 का है। अराध्य देव गुरुजी महाराज प्रयाग राजजी का कार्यक्रम सकुशल सम्पन्न करके सवाई धाम लौटना चाहते थे। क्योंकि शिव रात्रि निकट थी और सर्व समर्थ महाराज जी शिव रात्रि का पर्व बड़ी धूम–धाम से मनाने का मन बना चुके थे। मगर इलाहाबाद निवासी आदरणीय बड़े गुरुभाई एवं करुणा सागर के लाड़ले परम शिष्य डा. बी. पी. जौहरी के विशेष आग्रह को न टालते हुए, इनके निवास स्थान पर एक सप्ताह के यौगिक कार्यक्रम की अनुमति प्रदान कर दी। माघ मेला के समय में भी अपने त्रिलोकी नाथ गुरु देव जी महाराज भाई जी डा. जौहरी के मकान पर ही, जो अलापी बाग में स्थित है रात्रि विश्राम करते थे।

आदरणीय गुरु भाई डा. जौहरी का तो मानों भाग्य उदय हो गया था। आनन–फानन में उमंग और उत्साह के साथ योग प्रचार कार्यक्रम के लिये सम्पूर्ण व्यवस्थाएँ पूरी कर ली गई। गुरुभाईयों को तो इस कार्यक्रम का पता ही था और आदरणीय डा. साहिब जी ने अपने इष्ट मित्रों एवं रिश्तेदारों को 'लीला धारी' के दर्शनार्थ आने का निमन्त्रण तुरन्त दे डाला। इस प्रकार तीसरे दिन तक सभी आमन्त्रित बन्धु अपनी–अपनी सुविधानुसार बस, कार, रेलगाड़ी एवं हवाई जहाज द्वारा कार्यक्रम स्थल पर पहुँच चुके थे।

गुरुभाई जी डा. जौहरी के निवास स्थान पर हुए कार्यक्रम में सिद्धों के सम्राट गुरुदेव जी महाराज के साथ कई पार्षद गण नहीं थे। एक मात्र आदरणीय गुरुभाई दादा पोहकर मल शर्मा ही गुरु सेवा का गर्व प्राप्त कर रहे थे। श्री शर्मा जी वर्तमान में गुरुदेव महाराज की जन्म भूमि अलुपुर (पानीपत) में सेवा रत हैं।

प्रस्तुत घटना चौथी प्रात: की है जो आदरणीय दादा श्री पोहकार मल शर्मा से ही सम्बन्धित है। बात ऐसे बनी कि आज श्री शर्मा जी स्वयं जाग्रत नहीं हुए। जब इन्हें उठाया गया तो रोने लगे। यह रोना सभी के लिए पहेली बन गया। रोने का कारण पूछने पर श्री शर्मा जी बोल नहीं पा रहे थे। अन्तर्यामी श्री गुरुदेव भगवान को स्थिति से अवगत कराया गया। कालचक्र, युगचक्र, और जगचक्र को चलाने वाले योग योगेश्वर गुरुदेव भगवान अनजाने से बन कर पूछने लगे "लल्ला पोखर! क्या बात है?" (आपश्री पोहकर के स्थान पर पोखर ही पुकारते थे)

गुरूजी द्वारा पूछने पर श्री शर्मा जी और तेज रोने लगे जैसे तैसे करके श्री गुरुदेव महाराज ने शर्मा जी को चुप कराया तो श्री शर्मा जी बोले "मेरे पिता जी की मृत्यु हो गई है। मैं घर जाऊंगा, मुझे किराया दे दो। मुझे स्वप्न हुआ है।"

श्री गुरुदेव भगवान बोले "नहीं लल्ला तेरे पिता जी पं. मोती राम सकुशल हैं। मृत्यु नहीं हुई है। तू फिकर मत कर।" श्री पोहर मल शर्मा ने कहा कि "आप ही तो कहते हैं कि ब्रह्म मुहूर्त का स्वप्न सच्चा होता है। मैं तीन बजे लघु शंका के लिए उठा था। उसके पश्चात अभी उठते–उठते यह स्वप्न आया है।" श्री शर्मा जी की यह बात सुनकर डा. जौहरी साहिब ने कहा कि यह गांव का गँवार है। सपने की बात पर रोता है। दुनिया तो चांद पर जाने वाली है।

अन्तर्यामी योग योगेश्वर गुरुदेव भगवान ने अपने लाड़ले शिष्य से कहा लल्ला पोखर! तू आज एक दिन रूक जा, अगर तेरे पिता जी का कुशल पत्र आ जाए तो ठीक है न? और आज पत्र नहीं आया तो कल प्रातः चले जाना। तू अकेला ही तो साथ है, मुझे भी सुविधा रहेगी। श्री पोहकर मल जी त्रिलोकी नाथ के इस आश्वासन से सहमत हो गये। सभी जो खड़े हो कर सुन रहे थे कुछ मुस्करा दिए। एक बाबू जी तो यों बोले, कि यह गँवार नहीं है, समझदार है।

आज कुछ लोगों ने अपने घर लौटने का मन बना रखा था। मगर सिद्धों के सरदार, लीलाधारी, अनाथनाथ परम योगयोगेश्वर आराध्यदेव गुरु महाराज द्वारा पत्र आने के आश्वासन के निमित्त रुक गए, कि देखते हैं क्या होता है? पत्र आता है अथवा नहीं?

दिन का समस्त कार्य निर्धारित कार्यक्रमानुसार चला। अपराह्न लगभग तीन बजे का समय रहा होगा। भाग्य विधाता गुरुदेव जी महाराज पत्रों का उत्तर लिख रहे थे। आदरणीय भाई पं. पोहकर मल गुरुदेव को पंखा ढोल रहे थे। तभी गुरुदेव जी ने श्री शर्मा जी को आदेश दिया कि जाओ लल्ला, डाक ले आओ, डाकिया आ रहा है। श्री शर्मा जी इस विचार के साथ चल पड़े कि :–

एक भरोसे, एक बल, एक आस–विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।।

उस समय कार्यक्रम स्थल से दो–तीन फरलांग से डाक लानी पड़ती थी। श्री शर्मा जी ने डाक ले ली और यह तो देख लिया कि मेरा पत्र है या नहीं? मगर समाचार नहीं पढ़ा। हर रोज़ की तरह सारी डाक गुरुदेव महाराज को सौंप दी। आश्चर्य! महान आश्चर्य आदरणीय श्री पोहकर मल जी के पिता जी द्वारा लिखा हुआ पोस्ट कार्ड। पोस्ट कार्ड को गौर से देखने पर पता लगा कि इलाहाबाद डाक घर द्वारा लगाई मोहर तो आज की है ही, धनाना (शर्मा जी का गांव) के डाक घर द्वारा लगाई गई मोहर भी आज की ही है।

गुरु जी चमत्कार नहीं दिखाया करते, मगर चमत्कार हो जाते हैं।
सूर्य निकलने पर अन्धकार को कुछ ना कहे, मगर उजाला हो जाता है।

अष्टाङ्ग योग

डॉ. ऋषिराम शर्मा (लखनऊ)

अब हम समाधि की स्थितियों की विवेचना करेंगे। यद्यपि यह बुद्धि का विषय नहीं है और न तर्क बुद्धि से समझा जा सकता है तथापि शास्त्रों द्वारा दिये लक्षणों से इस पर विचार किया जा सकता है, जो केवल शब्द ज्ञान ही होगा और तथ्य ज्ञान तो समाधि द्वारा प्रज्ञा की सातों प्रान्तभूमियों को पार कर ऋतम्भरा प्रज्ञा ही जानती और समझती है।

महर्षि पतञ्जलि ने समाधि को इस प्रकार परिभाषित किया है–

"तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः"

अर्थात् जब ध्यान की परिपक्वता हो जाने पर ध्यान के ध्येय का नाम तथा रूप का बाह्य स्वरूप के चिन्तन से अहंता सूक्ष्म सारतत्व में चली जाय तथा केवल ध्येय ही प्रकाशित होने लगे और अहंता भी लुप्त जैसी हो जाये तब चित्त की उस स्थिति को समाधि कहते हैं। समाधि चित्त के निरोधपरिणाम के फलस्वरूप प्रकट होती है। महर्षि पतंजलि ने निरोध परिणाम को इस प्रकार परिभाषित किया है कि–

"व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोः अभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तन्वयो निरोधपरिणामः"

अर्थात् जब चित्त में चित्तवृत्ति के व्युत्थान का संस्कार लुप्त हो जाये तथा उसके निरोध के संस्कार का प्रादुर्भाव हो जाये तथा निरोध के समय चित्त ध्येयस्वरूप में ही प्रकाशित हो जाये तब उसे चित्त का निरोधपरिणाम कहा जाता है। इस परिणाम में ध्येय के सारतत्त्व प्रकाश में आ जाते हैं। और उसमें लीन अहंता उस सारतत्व को लेकर ही समाधि से बाहर आती है। ठीक उसी तरह जिस तरह कि अग्नि में लीन लोहा जब अग्नि से बाहर आता है तब वह अग्नि का रंग तथा दाहक–शक्ति साथ लेकर आता है। चित्त के तीनों परिणामों से चित्त की अवस्थाओं में परिवर्तन आता है। चित्त सदैव किसी न किसी संस्कार प्रत्यय से अतिरंजित रहता है। जैसे ही एक संस्कार लुप्त होता है वैसे ही उसके स्थान पर दूसरा संस्कार प्रकट हो जाता है। फिर भी दो संस्कारों के आवागमन के अन्तराल में एक क्षण ऐसा भी होता है जबकि चित्त संस्कार रहित प्रकाशित होता है, भले ही यह स्थिति हमारी अहंता की ग्रहणशक्ति की पकड़ में न आती हो। अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा इस अंतराल की अवधि में वृद्धि कर ध्याता तथा ध्येय का सम्बंध–विच्छेद हो जाना तथा ध्याता का अपनी अहंता के साथ लुप्त जैसा हो जाना तथा चित्त में केवल ध्येय की वास्तविकता का प्रकाशित रहना ही चित्त का निरोध परिणाम है। इस स्थिति की सिद्धि के बाद ही साधक में समाधि में प्रवेश करने की योग्यता आ जाती है। समाधि की स्थिति में स्वरूपशून्यता हो जाने के कारण उसके विषय में हमारी बुद्धि कुछ भी बताने में असमर्थ है। यहीं से प्रज्ञालोक आरंभ हो जाता है जिसकी सात प्रान्तभूमियाँ हैं। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि–

''तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा''

अर्थात् समाधि में प्रवेश होने के बाद सात प्रान्तभूमि वाली प्रज्ञा की प्राप्ति होती है जिनका केवल अनुभव किया जा सकता है न कि शब्दों में वर्णन। धारणा से आरंभ करके समाधि में प्रवेश करने की स्थिति का जो ज्यामितीय वर्णन प्रोफेसर आई. के. तैमिनी ने अपनी पुस्तक ''योग विज्ञान'' में दिया है, वह मैं उनको आदर देते हुए दे रहा हूँ।

बुद्धि की अहंता में जो ज्ञान का विषय रहता है उसे प्रत्यय कहा जाता है। जब तक बुद्धि की अहंता (Consciousness) कार्य करती रहती है तब तक कोई न कोई प्रत्यय उसमें बना रहता है। माना कि यह A,B,C,--- आदि नाम वाले विभिन्न प्रत्यय है जो कि समय–समय पर इसके विषय हैं। माना कि हमारी समाधि का ध्येय विषय प्रत्यय A की प्रतीति अलग–अलग होती रहती है यानि ध्याता तथा ध्येय में एकात्मता नहीं हुई है तब प्रत्यय A को वृत्त के अन्दर दिखाया गया है। जब केवल प्रत्यय A प्रकाशित है और बुद्धिगत अहंता उसी में लुप्त हो गई है, तब चित्त प्रत्यय A के रूप में ही प्रकाशित है। नीचे इसे डायग्राम (Diagram) से समझाया गया है।

ज्यामितीय डायग्राम (Geometrical Diagram)

Ordinary mind {	Ⓐ	Ⓑ	Ⓒ	Ⓓ	Ⓔ	Ⓕ	Ⓖ	Ⓗ
Dharna {	Ⓐ Ⓐ	Ⓐ Ⓐ	Ⓑ Ⓐ	Ⓐ Ⓐ	Ⓐ Ⓑ	Ⓒ Ⓐ	Ⓐ Ⓐ	Ⓐ Ⓐ
Dhyan {	Ⓐ Ⓐ Ⓐ A	Ⓐ Ⓐ A Ⓐ	Ⓐ A A A	Ⓐ Ⓐ Ⓐ A	A Ⓐ A Ⓐ	Ⓐ A A A	Ⓐ Ⓐ Ⓐ A	Ⓐ Ⓐ Ⓐ Ⓐ
Samadhi {	A A A	A A A	A A A	A A A	A A A	A A A	A A A	A A A

उपरोक्त डायग्राम में समाधि की अवस्था में ध्याता, ध्यान की प्रक्रिया तथा ध्येय तीनों का एकीकरण हो गया है और चित्त ध्येय प्रत्यय A के रूप में ही प्रकाशित है।

उपरोक्त डायग्राम से यह स्पष्ट है कि धारणा, ध्यान तथा समाधि की प्रक्रिया ध्याता तथा ध्येय के सम्बन्ध पर आधारित है तथा क्रमागत प्रगति से तीनों प्रक्रिया जुड़ी हुई हैं।

जैसे–जैसे प्रगति होती जाती है वैसे–वैसे बुद्धिगत अहंता शुद्ध होती जाती है, उसमें सतोगुण का प्रभाव बढ़ता जाता है तथा वह अपने कारण विशुद्ध चैतन्य में गोता लगाने की क्षमता प्राप्त करती जाती है। इस प्रगति की सात भूमिकायें अर्थात् प्रान्तभूमि (levels) हैं जोकि समाधि की उत्तरोत्तर उन्नति से सम्बन्धित सात भेद हैं, वह हैं 1– वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि 2– वितर्कानुगत असम्प्रज्ञात समाधि 3– विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि 4– विचारानुगत असम्प्रज्ञात समाधि 5– आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि 6– आनन्दानुगत असम्प्रज्ञात समाधि 7– अस्मितानुगत समाधि। इन स्थितियों में कार्यरत बुद्धिगत अहंता को ''प्रज्ञा'' (super consciousness) कहा जाता है। अस्मितानुगत समाधि में प्राप्त प्रज्ञा को ''ऋतम्भरा प्रज्ञा'' कहा गया है जोकि विशुद्ध सत्य को धारण करने वाली बुद्धि है। इन सातों प्रान्तभूमियों में प्रवेश प्रज्ञा के उत्तरोत्तर विकास पर निर्भर है। इन प्रान्तभूमियों में परमात्मा के दिव्य प्रकाश तथा योगैश्वर्य की अनुभूति भी भिन्न–भिन्न स्तर की होती है। उदाहरण के रूप में यदि परमात्मस्वरूप को एक केन्द्र बिन्दु माना जाये जहाँ से प्रकाश का उदय होता है तथा प्रान्तभूमियों को दर्शाने के लिए छः समकेन्द्रिय वृत खींचे जायें जिनकी परिधि केन्द्र से दूरी के अनुसार उत्तरोत्तर घटती क्षमता वाले पारदर्शी पदार्थों से बनाई गई हो तो विभिन्न वृतों के अन्तराल क्षेत्रों में विभिन्न प्रकाश तथा शक्ति की अनुभूति होगी। जैसे–जैसे बहिरंग प्रान्तभूमियों को पार कर केन्द्र बिन्दु के समीप पहुँचते जायेंगे वैसे–वैसे दिव्य प्रकाश तथा योगैश्वर्य उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता जायेगा। यह प्रकृति तथा पुरूष के रहस्यों का महासमुद्र है जोकि कल्पनातीत तथा अनन्त विस्तार वाला है। मनुष्य की बुद्धि तो इसे समझ नहीं सकती, चाहे कोई कितना भी विद्वान क्यों न हो। जगतपिता परमात्मा श्रीकृष्ण भी इसे स्वयं स्वीकार करते हैं कि–

''न रूपमस्य तथोपलभ्यते नान्तो न चादिः न च संप्रतिष्ठा।।''

अर्थात् प्रकृति के स्वरूप को कोई नहीं समझ सकता, क्योंकि उसका न तो आदि है और न अन्त है तथा न उसका कोई आधार है जिसे कोई देख सके या समझ सके। भगवान श्रीकृष्ण एक और रहस्यमयी बात कहते हैं कि –

य: एवं वेत्ति पुरूषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।।

अर्थात जो सर्वाधार, सर्वव्यापक, सर्वसाक्षी, सर्वात्मा, सर्वभर्ता तथा सर्वनियन्ता पुरूष तथा अपने गुण तथा विकारों सहित प्रकृति को जान लेता है, वह शरीर में रहते हुए भी सर्वबन्धनों से मुक्त हो जाता है। इन रहस्यमयी बातों से एक बात स्पष्ट होती है कि प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में अनन्त रहस्य छिपे हैं और उनको जानने की प्रक्रिया भी उतनी ही रहस्यमयी है। जब प्रज्ञा अपने ध्येय प्रत्यय का विभिन्न प्रान्तभूमियों में निरीक्षण करती है तब उसे नये नये सूक्ष्मतर रहस्यों का ज्ञान होता जाता है। इस ज्ञान का प्रथम प्रान्तभूमि से आरम्भ होता है और उत्तरोत्तर यह ज्ञान विस्तृत तथा सूक्ष्मतर एवं अतिसूक्ष्मतर होता जाता है और जब केन्द्रबिन्दु

पर आत्मप्रकाश में निरीक्षण होता है तो ध्येय प्रत्यय के सम्पूर्ण रहस्य प्रत्यक्ष हो जाते हैं। इसीलिए उपनिषद यह संकेत देते हैं कि –

''यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदज्ञातं भवति सः एव आत्मा''

अर्थात् आत्मतत्व वह है जिसके जान लेने पर सम्पूर्ण रहस्यों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसका कारण महर्षि वेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र में दिया है कि '' **आत्मनि होवं विचित्राश्च** '' अर्थात् यह विचित्र तथा विलक्षण सृष्टि आत्मा में ही समाहित है। अतः आत्मज्ञान के साथ ही सृष्टि का ज्ञान स्वतः हो जाता है।

समाधि की स्थिति तथा उसके भेद सत्य को जानने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। सृष्टि की उत्पत्ति तथा परमात्मा के स्वरूप पर विचार किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि परमात्मा के तेज में सम्पूर्ण सृष्टि इस प्रकार लिपटी हुई है कि परमात्मा स्वयं उसके सप्त स्तरीय आवरण में छिप गया है। सबसे ऊपर भौतिकीय आवरण है जो स्थूल शरीरों के रूप में दिखाई देता है, उसके अन्तराल में मनोमय आवरण है जो सूक्ष्म शरीरों के रूप में अनुभव में आता है, उसके भी अन्तराल में विज्ञानमय आवरण है जो कि कारण शरीरों के रूप में प्रकाशित होता है , उसके भी अन्तराल में आनन्दमयकोश का आवरण है जो कि प्राणशरीरों के रूप में प्रकाशित है तथा उसके भी अन्तराल में परमात्मा का तेज बीज रूप में विद्यमान है। इन सब आवरणों को क्रमशः पारकर बीज स्वरूप तक पहुँचने के लिए तथा मार्ग के रहस्यों तथा योगैश्वर्य को जानने के लिए ही यह सात उपरोक्त समाधियों का विधान महापुरुषों ने दिया है। जैसे ही इन आवरणों को हटा दिया जाता है जैसे ही योगी का निर्बीज समाधि में प्रवेश होता है और उसका परमात्मस्वरूप में एकीकरण हो जाता है। जहाँ तक ज्ञानप्राप्ति का सम्बंध है, वह स्वतः समयानुकूल प्रकट होती है, ठीक वैसे ही जैसे पेड़–पौधों पर अनुकूल समय आने पर स्वतः ही फूल, पत्तियाँ तथा फल प्रकट होने लगते हैं।

(क्रमशः)

आत्म ज्ञान के बिना मनुष्य कभी शान्ति नहीं पा सकता और न गृहस्थ के रूप में गृहस्थी को सुन्दर ढंग से बरत सकता है। अस ज्ञान के लिए जंगल में जाने की आवश्यकता नहीं। अपने धर्म तथा सम्प्रदाय को त्यागने की भी आवश्यकता नहीं। सभी जीवन पद्धति में और इसी वेषभूषा में रहते हुए उस अनन्त ज्ञान तथा अनन्त शान्ति को प्राप्त किया जा सकता है। यह एक ऐसा ज्ञान है जिसका सम्बन्ध शरीर से नहीं अपितु मन से है। ज्ञान प्राप्ति हेतु (1) गुरु कृपा (2) गुरु द्वारा इंगित साधनों पर चलना तथा (3) ईश्वर से सहायता माँगना अपेक्षित है।

जड़ी–बूटी चिकित्सा : युग की आवश्यकता

पं. लीलापत शर्मा

एक बार ब्रह्मा जी ने जीवक ऋषि को आदेश दिया कि पृथ्वी पर जो पत्ता पौधा, वृक्ष, वनस्पति व्यर्थ दिखे, तोड़ लाओ। ग्यारह वर्ष तक पृथ्वी पर घूमते रहने के बाद ऋषिवर लौटे और ब्रह्मा जी के समक्ष नतमस्तक होकर बोले– प्रभो! इन ग्यारह वर्षों में पूरी पृथ्वी पर भटका हूं, प्रत्येक पौधे के गुण–दोष को परखा, पृथ्वी पर एक भी ऐसा वृक्ष नहीं मिला जो किसी न किसी व्याधि के उन्मूलन में सहायक न हो। इस उदाहरण से वृक्ष, वनस्पतियों की औषधीय गुणवत्ता का भान होता है।

आज सभ्यता की घुड़दौड़ आपाधापी में मनुष्य को स्वास्थ्य के विषय में इस सीमा तक परावलंबी बना दिया है कि वह प्राकृतिक जीवन क्रम भी भुला बैठा है। फलतः आए दिन रोग–शोकों के विग्रह खड़े होते रहते हैं व छोटी–छोटी व्याधियों के नाम पर अनापशनाप धन नष्ट होता रहता है। मनुष्य अंदर से खोखला होता चला जा रहा है। जीवनी शक्ति का चारों ओर अभाव नजर आता है। आहार–विहार में समाविष्ट कृत्रिमता ने जिस प्रकार जिस सीमा तक शरीर के अंग अवयवों को अपंग और असमर्थ बनाया, उसी प्रकार चिकित्सा क्रम भी बनते चले गए। पूर्वकाल में आयुर्वेद ही स्वास्थ्य संरक्षण का एकमात्र माध्यम था। धीरे–धीरे बृहत्तर भारत में समाविष्ट अन्य संस्कृतियों के साथ अन्य पद्धतियां भी आईं और आज चिकित्सा के नाम पर ढेरों पद्धतियां प्रयुक्त होती हैं। इसे दुर्योग ही कहेंगे कि आयुर्वेद जैसी विशुद्ध चिकित्सा प्रणाली पर भी गत दशाब्दियों में वज्रपात हुआ है। इसे भी आधुनिक बनाने की ललक में आतुर गिने चुने विद्वानों ने इसकी उपयोगिता और भी कम कर दी है। आज जहां आयुर्वेद के योगों पर से लोगों का विश्वास घटता चला जा रहा है, वहीं तुरंत ठीक होने की आवेशपूर्ण जल्दबाजी ने उन्हें ऐलोपैथी का गुलाम बना दिया है। अनेक प्रकार की पद्धतियां प्रचलित होते हुए भी चारों ओर से एक ही मांग है कि वैकल्पिक चिकित्सा प्रणाली खोज निकाली जाए, मानवता को स्वास्थ्य संकट से मुक्ति दिलाई जाए।

यह विडंबना ही है कि जिन वनौषधियों के प्रयोग के कारण भारतवर्ष की विशिष्टता एवं संपन्नता आंकी जाती थी, उनके प्रयोग को भारतवासी ही भुला बैठे थे। पश्चिम, जर्मनी, हंगारी, सोवियत रूस, इण्डोनेशिया, चीन, जापान देशों में जहां जड़ी–बूटियों से चिकित्सा पर अनुसंधान कार्य होकर सफल प्रयोग भी किए जा रहे हैं, वहां इस हरीतिमा संपदा की जानकारी सारे विश्व को देने वाले भारत के चिकित्सक मनीषी स्वयं पाश्चात्याभिमुखी होते चले जा रहे हैं। आयुर्वेद, वनौषधि संपदा की गरिमा भुला देने का कारण यदि खोजा जाए तो इसे मात्र बौद्धिक परावलंबन ही कहा जाएगा। वैक्सीन, मारक, एण्टीबायोटिक्स, रेडिएशन, तथाकथित स्वास्थ्य संवर्धक विटामिन, हारमोन के घातक दुष्परिणामों पर सभी विचारशीलों ने गहराई से सोचा है।

वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि यदि कोई निरापद जीवनी शक्ति संवर्धक औषधियां हो सकती है तो वे मात्र प्राकृतिक रूप में पाई जाने वाली वनौषधियां ही है। आहार-विहार के सामान्य नियमों का पालन करते हुए श्रम या व्यायाम को जीवन में स्थान देते हुए मनुष्य सहज ही अपने अंतःकरण की सामर्थ्य को बढ़ा व प्रखर बना सकता है। यदि आधि-व्याधियों से रोकथाम हेतु आवश्यकता आ ही पड़े तो चारों ओर सहज ही उपलब्ध वनौषधियों से वह अपनी चिकित्सा भी करता रह सकता है। यह पद्धति हानि रहित तो है ही, आर्थिक दृष्टि से भी हमारे जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए एक मात्र अवलंबन भी है।

शरीर का धर्म है अपनी रक्षा के लिए व्यवस्था बनाना। जीवनी शक्ति के रूप में उसे एक सुरक्षा संस्थान मिला हुआ है। रक्त के श्वेत कण एवं इम्यून संस्थान सुरक्षा सेना, सीमा आरक्षी बल का काम करते है। बाह्य आक्रमणकारी जीवाणु विषाणु पहले मानव शरीर में सुरक्षा शक्ति की कमजोरी का जायजा लेते है। उनकी घातक सामर्थ्य में वृद्धि शरीर की कमजोरी के साथ बढ़ती जाती है एवं शरीर रोगी होता जाता है। रोग से निवृत्ति भी इस पर निर्भर करती है कि कितना शीघ्र विकृत द्रव्यों का निष्कासन होता है। गुर्दे छलनी की तरह रक्त में से विजातीय द्रव्यों को निकाल कर मूत्र के रूप में बाहर फेंकते है। यही गुर्दे जब रोगग्रस्त हो जाते है तब सारा विजातीय द्रव्य शरीर में एकत्र होता चला जाता है। ऐसे व्यक्ति जीवित लाश की तरह अपनी यात्रा खींचते है, न वे श्वांस ले पाते है न खाना ठीक से खा पाते है। बाह्य जीवाणु, विषाणुओं के घातक प्रभाव उन्हें शीघ्र मृत्यु के मुख में ले जाता है। अपाचन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न विकार द्रव्य जब एकत्र होते चले जाते है, आहार विहार में व्यतिक्रम आ जाता है। प्रकृति के अनुकूल दिनचर्या का निर्धारण नहीं हो पाता है तो रोगों की बाढ़ सी आ जाती है।

इस मूल आधार को समझने के बाद चिकित्सा व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित कर सकना संभव है। किसी भी लक्षण को दबाने के बजाए उसे जन्म देने वाले कारण को जड़ से मिटाना ही श्रेयस्कर है। तुरंत लाभ की दृष्टि से तो यही उचित लगता है कि दृष्टिगत लक्षण को मिटा दिया जाए। गंदगी पर मिट्टी डालने से वह आंखों से ओझल तो हो सकती है पर नष्ट नहीं होती। दर्द को वेदना नाशक औषधियों से उस समय तो मिटाया जा सकता है, लेकिन मूल रूप में बैठे रोग को यदि समूल नष्ट नहीं किया गया तो वह नए रूप में अधिक तीव्रता के साथ उभर कर आ सकता है। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि चिकित्सा पद्धति के अंतराल में छिपे अंधविश्वास को जड़ से निकाल फेंक कर अब जनमानस को अपनी दृष्टि का परिमार्जन करना ही चाहिए। जो श्रेष्ठ है वह तो ग्राह्य है पर सामयिक लाभ का दर्शन किसी भी मूल्य पर जीवन में नहीं उतारा जा सकता।

जहां तक सिद्धांतों, रोग निदान परीक्षण का सवाल है, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को धन्यवाद दिया जाना चाहिए और उसकी उपलब्धियों की प्रशंसा भी की जानी चाहिए। उपचार पक्ष से असहमत होते हुए अब आवश्यकता आ पड़ी है कि जड़ी-बूटियों के द्वारा उपचार पद्धति का पुनर्जीवन किया जाए। इनके उपयोग का विज्ञान सम्मत ढंग जनमानस को समझाया व

हृदयंगम कराया जाए। वनस्पतियों का विशाल जगत हमें प्राकृतिक जीवन क्रम को अपनाने हेतु सतत प्रेरित, आमंत्रित करता है। आवश्यकता उनका महत्व समझने भर की है।

वनस्पति जगत के कई भेद हैं। एक वे जलाने, खाद या उपकरण बनाने के काम आती हैं। दूसरी वे जिन्हें खाकर प्राणी अपना गुजारा करते हैं, मनुष्यों से लेकर पशुपक्षी वर्ग के जीवधारी इसी श्रेणी में आते हैं। किसे पत्ती, किसे कंदमूल, किसे बीज अनुकूल पड़ते हैं, यह रुचि विशेष की बात है। यह सभी वर्ग वनस्पतियों के ही हैं। तीसरा वर्ग औषधियों का है वे घास–पात जैसी दिखती तो हैं पर अपने विशेष गुण के कारण रोग निवारण आरोग्य वर्धन एवं परिशोधन के काम आती है। चिकित्सा जगत में इन्हीं की प्रमुखता है। यों उसमें खनिज एवं विषों का रूपांतरण भी सम्मिलित हो गया है, किंतु बाहुल्य चिकित्सा क्षेत्र में वनस्पतियों का ही है। उन्हीं को चूर्ण, सत्व, गोली, अवलेह, अर्क, आसव आदि के रूप में एकाकी अथवा सम्मिश्रणों के साथ प्रयोग किया जाता है। यह वनस्पति का औषधि पक्ष है। विधाता द्वारा मनुष्यों को दिए गए अनेक उपहारों में वनौषधियों को भी एक ऐसा ही वरदान कहा जा सकता है। जिसने शारीरिक व्याधियों और मानसिक व्याधियों के निवारण में देवताओं जैसे अनुग्रह प्रस्तुत किए हैं।

आहार एवं औषधीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियां अपने आप में पूर्ण हैं। उनमें से प्रत्येक की संरचना अनेक यौगिकों, क्षारों रसायनों और खनिजों के सम्मिश्रण से हुई है।

प्राणियों की आदतों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वे जिस वनस्पति वर्ग पर निर्भर हैं, उतने से ही अपना काम चला लेते हैं। अनेक सम्मिश्रणों की फिराक में नहीं फिरते। गाय, घोड़ा, वर्ग के प्राणी घास पसंद करते हैं। ऊंट, बकरी जैसे पत्तों के सहारे निर्वाह करते हैं। बंदर को फल पसंद है तो चिड़िया को बीज अच्छे लगते हैं। इनमें हर एक को कई–कई वनस्पतियों की तो छूट है कि एक के न मिलने पर दूसरे के सहारे काम चल सके पर ऐसा नहीं होता कि कोई जब भी कुछ खाए तो कई–कई को खोज कर उनकी चटनी बनाए, तब कहीं उन्हें गले उतारे।

शास्त्रोक्त एकौषधि पद्धति को अब नए सिरे से पुनर्जीवन देना होगा। आयुर्वेद के कर्णधारों ने एक रोग में एक समय में एक ही जड़ी बूटी देने का नियम निर्धारित किया था। सम्मिश्रणों की बात तो बहुत बाद में सूझी। जड़ी बूटियों की संख्या अनगिनत है। इतने पर भी गुण धर्म के हिसाब से उनके वर्ग अधिक नहीं हैं। शुभारंभ की दृष्टि से यही सुविधाजनक रहेगा कि जो औषधियाँ सर्वत्र उगती हैं उनमें से एक का सीमित संख्या में इस प्रकार चुनाव किया जाय कि उसमें रोग निवारण के लिए आवश्यक सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो सके।

(विभूति फीचर्स से साभार)

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात'

–: स्वामी विवेकानन्द :–

विज्ञातारमरे केन विजानीयात – विज्ञाता को कैसे जानोगे? ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह स्वरूप में जानने योग्य होता, तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता। और यदि तुम आइने में अपनी आँखों का बिम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आँखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे बिम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा – यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो, तो इससे क्या हुआ? वह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न संसार का सम्भोग कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। 'हे हिन्दुओं, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो' – यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षी स्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हें मिलता है? – जो कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हें?

इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस मुक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्माण्ड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा–स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझाने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है – और इस देश, काल, निमित्त को आगे नाम–रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंग का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक् कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें विलीन हो जा सकती हैं, और तरंग में जो नाम रूप है, वे भी चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायें, पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें, पशुओं में और मनुष्यों में, देवताओं और मनुष्यों में भेदभाव पैदा करती है। सच तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय, नाम और रूप दूर कर दिये जायें, तो यह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायेगा, तब तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है, केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

नगरों (ग्रामों) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर [illegible] (स्टाम्प) का विज्ञापन
2. [illegible] पर [illegible] (स्पॉन्सरशिप)
3. [illegible] (मेलिंग) रु. 1000 प्रति [illegible] [illegible]
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन [illegible] प्रति [illegible]
5. डाकघर के अन्दर या बाहर [illegible] बोर्ड अथवा [illegible] लगाकर विज्ञापन [illegible] 100/- [illegible]
6. डाकघर की [illegible] पर [illegible] लगाकर विज्ञापन [illegible] 100/- [illegible] 400/-
7. [illegible] के माध्यम से विज्ञापन [illegible] कार्ड की [illegible] का विज्ञापन [illegible] 2/- प्रति [illegible]

SIDDHYOG Postal Regd. No. Ag. 19/06-08
January 2008

प्रधान कार्यालय :

सिद्धयोग

योग विज्ञान का प्रतिपादक [illegible] मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/श्रीमती

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा